ब्रज की तुलसी-कण्ठी माला

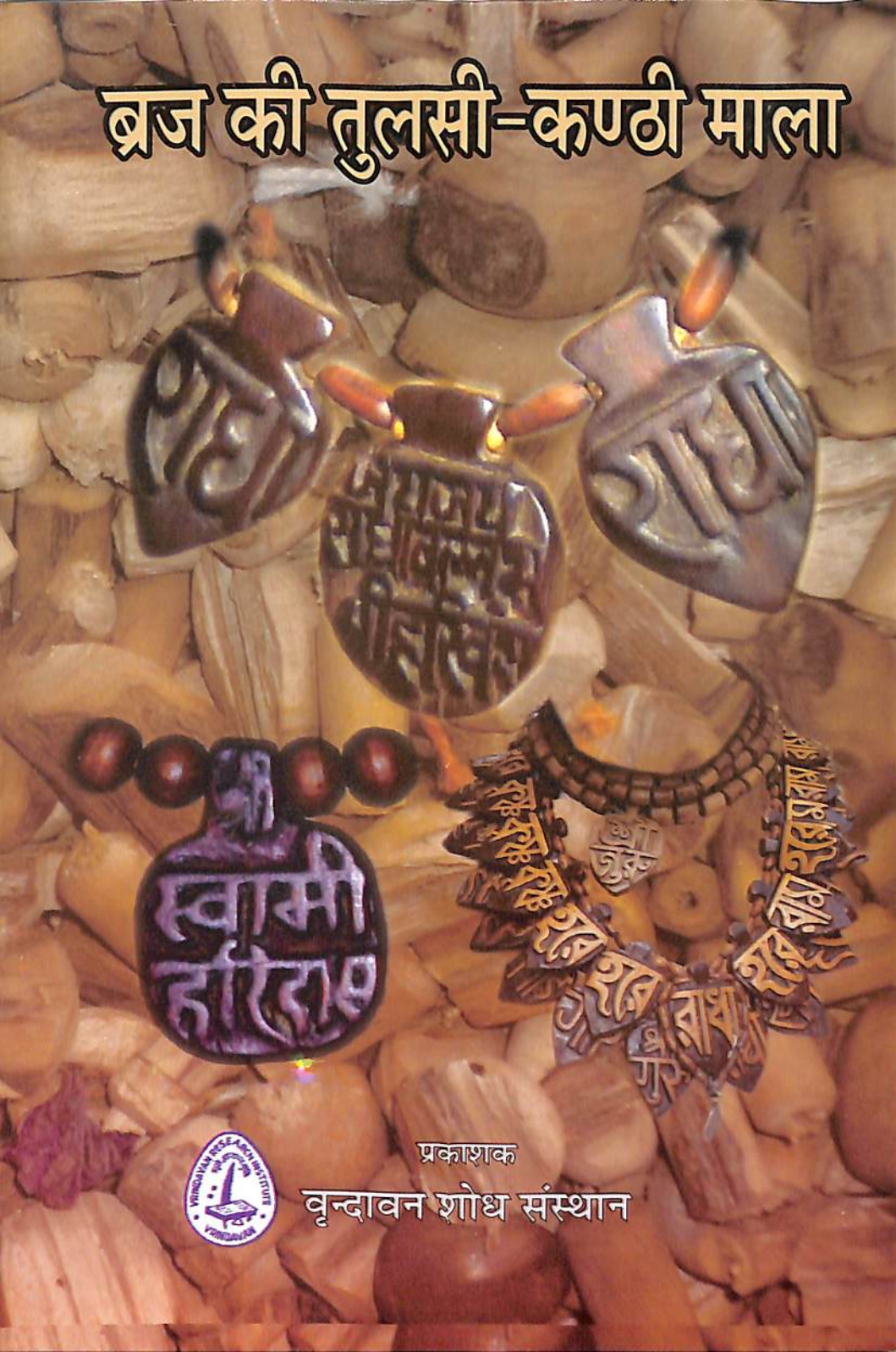

प्रकाशक
वृन्दावन शोध संस्थान

ब्रज की तुलसी-कण्ठीमाला

(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित)

ब्रज में तुलसी का महत्त्व, स्थानीय लोक-परम्परा में कंठी-माला, तुलसी-काष्ठ से बनी कण्ठियों का वैविध्य, पुराणों सहित स्थानीय देवालयों अल्पज्ञात-अज्ञात दस्तावेजों में उक्त विषयक उल्लेख, कण्ठियों के आकार-प्रकार एवं उपयोगिता पर केन्द्रित कार्य—

संपादक

डॉ. महेशनारायण शर्मा

निदेशक

वृन्दावन शोध संस्थान

संकलन एवं सह-संपादन

डॉ. राजेश कुमार शर्मा

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

प्रकाशक :

वृन्दावन शोध संस्थान

रमणरेती, वृन्दावन

Phone : 91-5652540628, 6450731, Fax : 0565-2540576
Website : www.vrindavanresearchinstitute.org
Email : vrindavanresearch@gmail.com

ISBN : 978-81-904946-9-4

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण - प्रथम
वर्ष २०१२-१३

मूल्य : रु. 90/- (पेपर बैक)
रु.140/- (सजिल्द)

मुद्रक : अग्रवाल एण्ड कंपनी, मथुरा।
फोन नं. 9568729738, 9045172022

प्राक्कथन

सन्त समाज के साथ ही आम वैष्णव साधकों की जीवन शैली से जुड़ी तुलसी-कण्ठीमाला की व्याप्ति आज सनातनी परम्परा में विराट फलक पर देखी जा सकती है। ब्रज क्षेत्र में पल्लवित इस परम्परा ने अखिल भारतीय ही नहीं अपितु इस्कान जैसे पवित्र आंदोलनों के चलते अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त विस्तार पाया है। जहाँ विभिन्न पुराणों में तुलसी की महिमा सहजता से दृष्टिगोचर होती है, वहीं ब्रज की देवालयी एवं लोक संस्कृति के अन्तर्गत विभिन्न कालक्रमों में रचे गये अपरिमित ब्रजभाषा साहित्य से भी उक्त विषयक महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित होते आए हैं।

कभी ब्रजमण्डल में संत एवं भक्तों द्वारा सेवित; सेवा भाव से जुड़ी तुलसी-कण्ठी माला परम्परा में आज व्यापक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। ब्रज क्षेत्र में विभिन्न सम्प्रदायों की रीति एवं परम्परा के अनुसार कण्ठी-माला तैयार करने वाले विशेषज्ञों के समूह चरणबद्ध तरीके से स्वकार्य करते हुए आकर्षक कण्ठियाँ तैयार करते हैं। यहाँ प्रचलित कण्ठी-मालाओं की परम्परा के साक्ष्य काफी पूर्व से देखने को मिलते हैं। लोक की वाचिक परम्परा के साथ ही ब्रज की देवालयी संस्कृति में रचित प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में इसके महत्त्वपूर्ण उल्लेख यहाँ इस परम्परा का वैशिष्ट्य दर्शाने वाले हैं। पुराणों में 'तुलसी-दल' 'तुलसी-काष्ठ' एवं तुलसी मृत्तिका सहित उक्त विषयक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। ब्रज लोक परम्परा में तुलसी की कण्ठी धारण करने एवं भजन के लिए इसके उपयोग हेतु गुरुजनों द्वारा इसके विधान निश्चित किए गए हैं। यहाँ गुरु-दीक्षा के दौरान शिष्य को इसके उपयोग की जानकारी देते समय भजन के लिए तुलसी-माला की प्रतिकृति के रूप में अभ्यास हेतु सामान्य काष्ठ की माला भी दिए जाने जैसी परम्पराएं देखी जा सकती है। गुरुजनों द्वारा नए शिष्य के आचरण को जाँच परखकर तुलसी माला प्रदान करने की यह अनूठी प्रक्रिया यहाँ स्थानीय लोक संस्कृति में तुलसी-माला के महत्त्व का प्रतिपादन करने वाली है। ब्रजमण्डल में साधु-संत एवं वैष्णव भक्तगण तुलसी की इन कण्ठियों का उपयोग इकलड़ी, दुलड़ी, सुदर्शन माला, शालिग्राम माला, पंचलड़ी, दुपेचा एवं महामंत्र अंकित चौकीयुक्त माला के रूप में करते हैं। तुलसी-माला की इन विविधताओं से इतर यहाँ तुलसी काष्ठ का हीरा एवं कण्ठा धारण करने की परम्परा इसका अपना वैशिष्ट्य है।

संस्थान की रिसर्च एण्ड डाक्यूमेंटेशन प्रकाशन माला के अन्तर्गत ब्रज संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में किया गया यह कार्य स्वयं में अनूठा है। जिसमें डॉ॰राजेश कुमार शर्मा ने ब्रज क्षेत्र के पारम्परिक कण्ठी माला उद्योग से जुड़े विशेषज्ञों, सन्त महानुभाव एवं वैष्णव साधकों से विषय सम्मत जानकारी प्राप्त करने के साथ ही स्थानीय लोक एवं देवालयी संस्कृति में तुलसी-कण्ठी माला विषयक अल्पज्ञात दस्तावेजों, प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों एवं वाचिक परम्परा में विद्यमान महत्त्वपूर्ण सन्दर्भों का संयोजन कर विषय की उपयोगिता बढ़ाई है। पुस्तक के प्रकाशन हेतु डॉ. ब्रजभूषण चतुर्वेदी तथा छायाचित्र संयोजन हेतु श्री उमाशंकर पुरोहित धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है श्रद्धा-आस्था एवं जिज्ञासा से जुड़े इस महत्त्वपूर्ण पक्ष पर केन्द्रित यह शोधपरक कार्य ब्रज में आने वाले पर्यटकों, शोधार्थियों एवं सुधीजनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

भवानी शंकर शुक्ल
अध्यक्ष
वृन्दावन शोध संस्थान

सम्पादकीय

लोक संस्कृति का अध्ययन वृहद एवं व्यापक विषय है। प्रत्येक अंचल की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। यह ब्रज संस्कृति का अपना वैशिष्ट्य है कि यहाँ का सांस्कृतिक पक्ष लोक एवं देवालयी दोनों संस्कृतियों के मिलन से अत्यधिक समृद्ध हुआ है। यहाँ विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों के देवालयों में श्रद्धा एवं भक्ति के धरातल पर उपजी कला-परम्पराओं ने स्थानीय पक्ष में नई चेतना का संचार करने के साथ ही समग्र भारतीय सांस्कृतिक पक्ष को अत्यधिक समृद्धि प्रदान की है।

लोक परम्पराओं की चर्चा चलते ही बात आम-जन के सांस्कृतिक क्रिया-कलाप और उस समाज के पारम्परिक रीति-रिवाजों पर केन्द्रित होती है। लेकिन ब्रज का सांस्कृतिक वैविध्य इस तथ्य को सर्वथा एक नए रूप में स्थापित करता है। यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा में देवालयी एवं लोक दोनों संस्कृतियों का समन्वय इसका अपना वैशिष्ट्य है। उत्सव मनोरथ या त्यौहारों के नाम एक, लेकिन आयोजन प्रक्रिया में विविधता यहाँ कई अवसरों पर देखी जा सकती है। इस प्रकार ब्रज मण्डल के समग्र लोक परिदृश्य में कुछ परम्पराएं केवल देवालयों में, कुछ आमजन में तथा कुछ दोनों में एक ही नाम से संज्ञित किन्तु परस्पर विविधता के साथ सम्पन्न देखी जा सकती हैं। ब्रज की लोक एवं देवालयी परम्पराओं के इस वैविध्य ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना में सदैव एक नई ऊर्जा का संचार किया है।

ब्रज के सांस्कृतिक परिदृश्य में तुलसी और इसके पवित्र काष्ठ से तैयार होने वाली मालाओं की व्याप्ति के संकेत प्राचीन हस्तलिखित देवालयी साहित्य से प्रकट होते हैं। जो कालान्तर में और अधिक समृद्ध होते गये हैं। देवालयी संस्कृति के साथ-साथ ब्रजवासी जन-मन में तुलसी की माला को काफी श्रद्धा और पवित्रता से देखा गया है। यहाँ साधु समाज के साथ-साथ ब्रजवासी लोग भी दीक्षा लेने के उपरान्त विधिवत तुलसी की कण्ठीमाला धारण करते हैं। तुलसी की यह कण्ठी मालाएँ यहाँ नाना रूपों में विविधता के साथ देखी जा सकती है। ब्रज क्षेत्र में गुरु दीक्षा के आयोजन वैसे तो वर्ष भर आयोजित होते रहते है तथापि गुरु पूर्णिमा (मुड़िया पूनौ) जैसे पर्व पर यहाँ इसकी भव्यता देखती ही बनती है। तुलसी काष्ठ से तैयार होने वाली इन कण्ठी मालाओं के महत्त्व को देशी ही नहीं अपितु विदेशी भक्तों ने भी पूरे पवित्र भाव

से स्वीकारा है। इस्कॉन के भक्ति आन्दोलन के चलते विदेशी भक्तों का एक बड़ा वर्ग आज गले में तुलसी की कण्ठी एवं हाथ में माला झोली धारण किये विशुद्ध भारतीय संस्कृति में रचा-पगा देखा जा सकता है।

धार्मिक महत्त्व एवं समय के सापेक्ष बढ़ती माँग ने इस परम्परा को आज अत्यधिक विस्तार दिया है। जिसके चलते ब्रज मण्डल के अनेक गाँव एवं शहरों में यह परम्परा एक लघु उद्योग की भाँति दर्शित है। संस्थान की रिसर्च एण्ड डॉक्यूमेंटेशन शृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित इस पुस्तक में डॉ॰ राजेश कुमार शर्मा ने कण्ठी-माला परम्परा से जुड़े महानुभावों के साक्षात्कार एवं प्राचीन देवालयी हस्तलिखित ग्रन्थों के अल्पज्ञात, अज्ञात संदर्भो का संयोजन कर विषय की उपयोगिता बढ़ायी है। पुस्तक के अन्तर्गत छायाचित्रों का संयोजन श्री उमाशंकर पुरोहित एवं प्रकाशन कार्य में सहयोग डॉ. ब्रजभूषण चतुर्वेदी का रहा है। आशा है, प्रस्तुत सामग्री ब्रज संस्कृति प्रेमी सुधीजनों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ॰महेश नारायण शर्मा
निदेशक
वृन्दावन शोध संस्थान

ब्रज की तुलसी कण्ठी-माला

अनुक्रम

- प्राक्कथन i
- सम्पादकीय iii
- परिचय एवं उद्देश्य १
- ब्रज और तुलसी कण्ठीमाला ३
- ब्रज एवं पौराणिक सन्दर्भों में तुलसी ८
- ऐतिहासिक एवं अन्य महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ २५
- कण्ठी तैयार करने की विधि एवं प्रयुक्त औजार ३७
- साक्षात्कार ४२
- छायाचित्र ५०
- शब्दानुक्रमणिका ५८
- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ५९

ब्रज की तुलसी-कण्ठी माला

परिचय एवं उद्देश्य -

ब्रज की लोक परम्परा में एक कहावत प्रचलित है, *''कण्ठी बन्ध चेला''* जिसका सीधा अर्थ है ऐसा-वैसा नहीं पक्का चेला। यद्यपि बोलने और सुनने में यह कहावत भले ही यहाँ परस्पर वार्तालाप का सामान्य हिस्सा प्रदर्शित हो लेकिन ब्रज लोक-मन में विद्यमान ये भाव स्थानीय समाज में कण्ठी-माला विषयक गहरी पैठ को दर्शाने वाले हैं। तुलसी और उसके पवित्र काष्ठ से तैयार कण्ठी-माला ब्रज संस्कृति में सैकड़ों वर्ष पूर्व से रची-बसी है। तुलसी की कण्ठी-माला के सन्दर्भ में विभिन्न पुराणों के अन्तर्गत मिलने वाले शास्त्रीय प्रमाण ब्रज साहित्य से एक नई जागृति के साथ अनूठे एवं भव्य अन्दाज में प्राप्त होते हैं। परिणामत: सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र में तुलसी का एक पृथक महत्त्व देखा जा सकता है। वृन्दावन ब्रज का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। मान्यतानुसार इसकी एक व्याख्या वृन्दा अर्थात् तुलसी का वन भी है। आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व मीरा के वृन्दावन आगमन पर उसकी यह अभिव्यक्ति यहाँ तत्कालीन समय में तुलसी का महत्त्व दर्शाने वाली है-

आली म्हाँने लागै वृन्दावन नीको।
घर-घर तुलसी ठाकुर सेवा दरसण गोविन्द जी को।।

ब्रजभूमि प्राचीनकाल से ही वैष्णव साधकों के आकर्षण का केन्द्र रही है। श्रीकृष्ण की क्रीड़ास्थली होने के कारण आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पटल पर व्यापकता लिए यह भूमि उक्त सन्दर्भ में स्वयं को एक विराट फलक पर स्थापित करती है। विक्रम की १५वीं-१६वीं शताब्दी में होने वाले भक्ति आन्दोलन के केन्द्र में स्थापित इस धरा पर कालांतर में अनेक धर्म-सम्प्रदायों का उदय हुआ। यहाँ स्थापित इन सभी वैष्णव-सम्प्रदायों ने तुलसी और इसके काष्ठ से तैयार कण्ठी-माला के महत्त्व को न केवल स्वीकारा बल्कि अपनी-अपनी साहित्यिक परम्पराओं में इसका यशोगान करते हुए इसे नव्य एवं भव्य स्वरूप प्रदान किया। तुलसी और इसके पवित्र काष्ठ से तैयार इन कण्ठी-मालाओं का सम्प्रदायानुसार वैविध्य ही यहाँ इसकी अहम विशेषता है। वैसे तो तुलसी के

महत्त्व सम्बन्धी विस्तृत उल्लेख विभिन्न पुराणों में मिलते हैं तथापि स्थानीय अल्पज्ञात, अज्ञात देवालयी पाण्डुलिपियों में इसका और अधिक निखरा स्वरुप सामने आता है।

स्थानीय लोक परम्परा में गुरु द्वारा शिष्य के कण्ठ (गले) में कण्ठी धारण कराते हुए गुरु मंत्र (दीक्षा) प्रदान करना, यहाँ वैष्णवीकरण की प्राचीन परम्परा है। भारतवर्षीय सगुण-निर्गुण साधकों के साथ ही ब्रज सम्प्रदायाचार्यों एवं संतवृन्दों द्वारा गुरु की महत्ता को शीर्ष पर प्रतिष्ठित किया गया। विनोद प्रियता ब्रज वासियों का मूल स्वभाव है, जहाँ गुरु द्वारा शिष्य बनाने वाले व्यक्ति को जाँच-परखकर कण्ठी प्रदान करने के उदाहरण सर्वत्र देखने को मिलते हैं, वहीं इस मामले में ब्रजवासियों की बात ही निराली है। यहाँ प्रचलित *''गुरु बनावै जानि के अरु पानी पीवै छानि कै''* लोकोक्ति स्थानीय परिवेश में गुरु-शिष्य परम्परा का महत्त्व दर्शाने वाली है। यहाँ तुलसी-काष्ठ से तैयार कण्ठी-मालाओं की माँग वैसे तो बारह महीने देखी जा सकती है लकिन मुड़िया पूनौ (गुरु पूर्णिमा) जैसे अवसर और गुरु-दीक्षा कार्यक्रमों के अन्तर्गत इसका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। इस दौरान सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र में भव्य अनुष्ठान होते हैं जिनमें विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों के संत एवं आचार्यों द्वारा शिष्य को गुरु मंत्र प्रदान करते हुए गले में कण्ठी धारण कराकर विधिवत दीक्षा प्रदान की जाती है। गले में कण्ठी तथा मस्तक पर तिलक धारण करना वैष्णवों की अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण परम्परा रही है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मध्यकाल में इस परम्परा के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए वैष्णवों को पर्याप्त संघर्ष झेलने पड़े।

वैष्णव साधकों के मध्य विभिन्न आकार-प्रकार की पृथक-पृथक तुलसी की कण्ठी धारण करने की महत्त्वपूर्ण परम्परा कालांतर में यहाँ लघु व्यवसाय के रूप में परिलक्षित होने लगी। ब्रज में कुशल कारीगर श्रद्धालुओं की माँग के अनुसार एक से बढ़कर एक आकर्षक कण्ठियाँ तैयार करते हैं। यहाँ विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों की रीति एवं सिद्धान्त के अनुसार कण्ठी तैयार करने वाले विशेषज्ञों की एक लम्बी फेहरिस्त मिलती है जिनके निर्देशन में कुशल कारीगरों के समूह पृथक-पृथक आकार प्रकार की बेहतरीन कण्ठियाँ तैयार करते देखे जा सकते हैं। स्थानीय कारीगरों द्वारा तैयार इन कण्ठियों का वैविध्य देखते ही बनता

है। इस्कॉन के अन्तर्राष्ट्रीय आंदोलन के फलस्वरुप यहाँ तैयार होने वाली परम्परागत कण्ठियों की माँग आज विदेशों तक जा पहुँची है। कारीगरों द्वारा तुलसी-काष्ठ में राधाकृष्ण आकृति की चिताई हो या विभिन्न सम्प्रदायाचार्यों के नाम का अंकन सभी कुछ कण्ठी-मालाओं में एक नया आकर्षण उत्पन्न करने वाला है।

देशी-विदेशी लोगों के कण्ठ (गले) में सुशोभित तुलसी की मालाओं का वैविध्य यहाँ ***इकलड़ी, दुलड़ी, कण्ठी, कण्ठा,हीरा,महामंत्रकण्ठा, तिलड़ी, पंचलड़ी एवं रामनामी*** आदि नामों से संज्ञित देखा जा सकता है। अभिजात्य वर्ग में रजत तथा स्वर्ण के प्रयोग से बनी कण्ठियों का प्रचलन भी यहाँ देखने को मिलता है। तुलसी काष्ठ से कण्ठीमाला तैयार करने की स्थानीय परम्परा में खेत से लेकर दुकान तक आने में तुलसी की यह पवित्र लकड़ी विशेषज्ञों द्वारा प्रदत्त आकार-प्रकार, कटाई-चिताई एवं चौकियों (तुलसी के मोटे तने से तैयार) पर राधाकृष्ण छवि तथा नामाक्षर अंकन जैसे कार्यों के चलते भव्यता प्राप्त करती है। ब्रजमंडल में ***वृन्दावन, जैंत, राल, गोवर्धन, राधाकुण्ड, गोकुल, कामवन, बेलवन एवं माँट*** सहित अन्य स्थानीय देहात क्षेत्र में भी कण्ठी-माला तैयार करने वाले विशेषज्ञों के समूह देखे जा सकते हैं। उक्त विषयक परम्परा के महत्त्व एवं वैविध्य पर अब तक कोई कार्य न होने से ब्रज संस्कृति का यह महत्त्वपूर्ण पक्ष शोधार्थियों, सुधीजनों एवं पर्यटकों की दृष्टि से ओझल ही रहा है। ब्रज संस्कृति में रचे पगे इस कार्य से जहाँ संस्कृति प्रेमी साधक इसके अज्ञात, अल्पज्ञात पक्षों से लाभान्वित हो सकेंगे, वहीं स्थानीय लोक परम्परा में सैकड़ों वर्ष पूर्व से विद्यमान इस परम्परा का यत्र-तत्र उपलब्ध वैविध्य एक स्थान पर सुलभ हो सकेगा।

ब्रज और तुलसी-कण्ठीमाला -

श्रीकृष्ण-बलराम की बाल-लीलाओं की साक्षी यह पावन भूमि धर्म-प्रेमी महानुभावों के लिए सदैव आकर्षण का केन्द्र रही है। विभिन्न सम्प्रदायाचार्यों एवं उनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में यहाँ एक से बढ़कर एक तपस्वी संत एवं वैष्णवों द्वारा ब्रज में निवास की दीर्घकालीन परम्पराएँ मिलती है।

इन संत, वैष्णवों एवं सम्प्रदायाचार्यों सहित उनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा ने ब्रज संस्कृति को वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक चेतना प्रदान की, जिसके विकसित

स्वरूप आज कला-परम्पराओं सहित अनेक रूपों में यहाँ देखे जा सकते हैं। यहाँ देवालयों की फूल-बंगला परम्परा हो या पुष्प कलियों से तैयार अद्‌भुत शृंगार, साँझी का आयोजन हो या नौकाविहार, चंदनकोठरी, और ख़सखाना जैसे उत्सव, खिचड़ी महोत्सव हो या अरई, चँदिया, दूधभात एवं कुलिया प्रसाद जैसी परम्पराएँ सभी में स्थानीय सांस्कृतिक पक्ष की सौंधी सुगन्ध सहजता से दर्शित होती है।

उत्सव धर्मी संस्कृति के इस उत्स ने ब्रज के सांस्कृतिक पक्ष को सर्वथा एक नवीन रूप प्रदान किया है। गुरु-शिष्य परम्परा के मध्य तुलसी की कण्ठी का विशेष महत्त्व है। यहाँ विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों ने तुलसी-काष्ठ से तैयार कण्ठी-माला के महत्त्व को सहजता से स्वीकारा ही नहीं अपितु अपने-अपने सम्प्रदाय-साहित्य में इसका यशोगान करते हुए इस परम्परा को नव्य एवं भव्य स्वरूप के साथ प्रस्तुत किया है। कण्ठ में कण्ठी एवं मस्तक पर स्व सम्प्रदायानुसार तिलक धारण करना वैष्णवों की अनिवार्य परम्परा रही है। अपनी-अपनी सम्प्रदायों में प्रचलित मान्यतानुसार ये लोग अलग-अलग आकार-प्रकार की; तुलसी-काष्ठ से बनी कण्ठियाँ धारण करते हैं। ***भक्तितंत्र*** में कण्ठी और माला का विधान बताते हुए कहा गया है कि वैष्णव नव-दाम-मयी तुलसी की माला यज्ञोपवीत की तरह ही धारण करें। कोई-कोई विद्वान माला का अर्थ नाभि पर्यन्त माला से लेते हैं जबकि कण्ठ से लगी हुई माला को कण्ठी कहकर सम्बोधित किया गया है-

इति कथयंति तत्र माला शब्देन कण्ठयपि प्रमाणयति।
कण्ठ लग्ना तु या माला सा कण्ठी परिकीर्तिता।।

निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रायः दुलड़ी कण्ठी बाँधी जाती है। कुछ निम्बार्की तुलसी का हीरा भी धारण करते हैं। वल्लभ कुल सम्प्रदाय में एकलड़ी व दुलड़ी दोनों कण्ठियाँ देखी जा सकती हैं। माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय में दुलड़ी, तिलड़ी एवं पंचलड़ी धारण करने की परम्परा देखने को मिलती है। इसी प्रकार यहाँ ***ललित*** एवं ***शुक*** सम्प्रदाय में भी प्रायः दुलड़ी कण्ठी दर्शित होती है।

संत वृन्दों की जीवन शैली से जुड़ी इस महत्त्वपूर्ण परम्परा ने आज व्यापक स्वरूप ग्रहण किया है। वैष्णव-सम्प्रदायों से जुड़े वृद्ध महात्माओं की मानें तो पूर्व में विभिन्न देवालयों एवं आश्रमों में रहने वाले संत महानुभावों द्वारा अपने तथा नये बनने वाले गुरु भाईयों के लिए स्वयं ही कण्ठियाँ तैयार की जाती थीं। तुलसी-काष्ठ से कण्ठियाँ तैयार करना इन लोगों के लिए प्रभु भक्ति का ही एक अंग था। वैसे तो इन लोगों द्वारा चक्रित क्रम में पूरे वर्ष ही समय निकालकर प्रतिदिन इस सन्दर्भ में कार्य किया जाता था तथापि मुड़िया पूनौं (गुरु पूर्णिमा) जैसे पर्वों पर इसकी माँग और अधिक बढ़ जाती थी। जिसके चलते ये लोग और अधिक श्रम करते हुए इस कार्य में लगे रहते। संत समाज की ईशाराधन से जुड़ी इस परम्परा ने आज अत्यधिक विस्तार पाया है। जिसके फलस्वरूप एक से बढ़कर एक आकर्षक तुलसी की कण्ठियाँ आज बाजार में सहजता से उपलब्ध हैं। प्रभु के प्रति समर्पण एवं भक्ति से जुड़ी इस परम्परा से आज अनेक स्थानीय परिवार लाभान्वित हुए हैं। ब्रजवासियों के घरों में वृद्ध, महिलाएं, बच्चे एवं पुरुष प्रभु सेवा का अंग मानते हुए तत्परता से इस कार्य को करते देखे जा सकते हैं।

तुलसी-काष्ठ से कण्ठी तैयार करने की परम्परा भले ही आज सीधे रोजगार से जुड़ी हो तथापि इस कार्य में लगे लोगों के द्वारा इसे तैयार करते समय पवित्रता एवं शुद्धता का पूरा ध्यान रखा जाता है। कण्ठी के लिए टिकली (तुलसी की टहनी को निश्चित अनुपात में काट, छीलकर मनका तैयार करने से पूर्व की स्थिति) तैयार करने से लेकर दाना बनाने एवं पुवाई के कार्य तक कोई भी इसे अपवित्र अथवा झूठे हाथों से स्पर्श न करे, इसके दाने आदि पैरों में न गिरें जैसी बातों का बुजुर्ग कारीगर पूरा ध्यान रखते हैं। और इस सन्दर्भ में वे नए लोगों को समझाते देखे जा सकते हैं। स्थानीय वैष्णव जनों में तुलसी की कण्ठी के प्रति गहरी आस्था देखी जाती हैं। यहाँ आज भी कई गृहस्थ एवं विरक्तजन अपने लिए स्वयं कण्ठी तैयार करते देखे जा सकते हैं; जिसके अन्तर्गत वे कण्ठी बनाने का कार्य एक अनुष्ठान की भाँति करते हैं। इस दौरान वे मौन रहकर निरन्तर गुरुमंत्र का जाप करते हुए कण्ठी तैयार करने के विविध चरण (टिकली तैयार करने से पुवाई तक) पूर्ण करते हैं। कण्ठी एवं यज्ञोपवीत (जनेऊ) आज भले ही बाजार

में आसानी से उपलब्ध हों लेकिन विभिन्न सम्प्रदायों से जुड़े कुछ वैष्णव परिवारों में कण्ठी एवं यज्ञोपवीत तैयार करने जैसे कार्यों को एक पवित्र अनुष्ठान मानकर स्वयं घर में ही अथवा विश्वास पात्र वैष्णवजन के द्वारा सम्पन्न कराए जाने जैसी परम्परा यहाँ आज भी विद्यमान हैं।

सघन कुञ्ज, वृक्ष एवं लता-पताओं से आच्छादित वन्य हरीतिमा ब्रजमंडल की अपनी विशेषता रही है। आज बढ़ते शहरीकरण के चलते पर्यावरण असंतुलन बढ़ा है जिसके कारण यहाँ वैसा पुरातन स्वरूप दर्शित नहीं होता लेकिन स्थानीय साधकों द्वारा विभिन्न कालक्रमों में रचित प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में विद्यमान महत्त्वपूर्ण विवरण ब्रज की उस वन-सम्पदा की ओर इंगित करते हैं जो कभी इसकी मुख्य पहिचान थी। ग्वाल-बालों के साथ श्रीकृष्ण द्वारा नाना प्रकार की क्रीड़ा करने का गौरव इस पावन धरा को प्राप्त रहा है, फलत: यहाँ के वृक्ष एवं लता-पताओं को आस्था की दृष्टि से देखा गया। १६वीं शताब्दी में विद्यमान संत प्रवर हरिराम व्यास यहाँ की लता-पताओं को प्रभु की अद्‌भुत लीलाओं का साक्षी मान उनके प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। शाही राजाज्ञा [१] के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े राजे-महाराजे जब देवस्थलों के निर्माण हेतु यहाँ उद्यत हुए तो वृक्षावलियों को साफ कराया जाने लगा, इस दृश्य से व्यास जी काफी व्यथित हुए।[२] महान भक्त रसखान का ब्रज की इन लता-पताओं के प्रति लगाव उनकी रचनाओं से दर्शित होता है।[३]

---

१. *सब राजन कौं आज्ञा दीनी। देवस्थल की रचना कीनी।।*
मंदिर हौंन लगे सतपुरी। प्रभु सौं रीति सबन की जुरी।।
(भगवतमुदित कृत रसिकअनन्यमाल १६ वीं शताब्दी)

२. *अब साँचौ ही कलिजुग आयौ।*
x x x
मथुरा खुदति कटत वृन्दावन, मुनिजन सोच उपायौ।
इतनौ दुख सहिबे के काजै, काहे कौ व्यास जिवायौ।। (हरिराम व्यासजी कृत पदावली)

३.(i) *मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।*
x x x
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि, कालिंदी-कूल-कदम्ब की डारन।।

(ii) *या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।*
x x x
कोटिक ह कलधौत के धाम, करील की कुञ्जन ऊपर वारौं।। (रसखान-पदावली)

तुलसी के पौधे, मृत्तिका, तुलसीदल एवं तुलसी-काष्ठ की महत्ता अनेक पुराणों सहित विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के वाणी साहित्य में मिलती है। इस पवित्र भूमि में विद्यमान लता-पताओं के प्रति श्रद्धा एवं आस्था का भाव इस स्थल की अपनी विशेषता है। लता-पता एवं वृक्षावली से टूटकर गिरने वाली लकड़ियों का संकलन भी पवित्र तुलसी-काष्ठ की भाँति करना यहाँ की विशिष्ट परम्परा रही है। हरिदासी सम्प्रदाय के महात्मा लोग ऐसी लताओं (बेलों) की लकुट धारणकर भ्रमण एवं प्रदक्षिणा करते देखे जा सकते हैं। कुछ महात्मा लोग इस पवित्र काष्ठ से माला तैयार कर धारण करते हैं। जिसके मनके (दाने) तुलसी-कण्ठी की अपेक्षा कई गुना बड़े होते हैं।

स्थानीय कण्ठी माला परम्परा में श्याम एवं गौर वर्ण तुलसी की कण्ठियाँ प्रचलित हैं। यद्यपि पौध-रूप में दोनों तुलसियों को पृथक-पृथक समझ सकते हैं। तथापि इनके पवित्र काष्ठ से कण्ठियाँ तैयार होने पर इनमें विभेद मुश्किल से हो पाता है। वैष्णवजन अपनी-अपनी आस्था एवं मान्यता के अनुसार अलग-अलग प्रकार की श्वेत एवं श्याम कण्ठियाँ धारण करते हैं। तुलसी-काष्ठ से बनने वाली कण्ठी-मालाओं में विविधता उसके आकार-प्रकार एवं बनावट को लेकर भी देखी जा सकती है। कुछ संत तुलसी-काष्ठ का हीरा भी धारण करते हैं। तुलसी की कण्ठियाँ तैयार करने में उसके मोटे तथा पतले दोनों प्रकार के तनों का उपयोग किया जाता है। *स्थानीय तुलसी-कण्ठी परम्परा में एक विशेष प्रकार की माला जिस* ***सुदर्शन या शालिग्राम*** *कण्ठी कहते हैं, की अपनी विशेषता है।* निम्बार्क एवं चैतन्य मत से जुड़े वैष्णव प्राय: इसका प्रयोग करते हैं। इसके लिए दानों (मनकों) का चयन एक दुरूह कार्य होता है। इस सन्दर्भ में कारीगरों को तुलसी-काष्ठ के ऐसे स्थलों का चयन करना होता है जहाँ तुलसी के पौधे की डाल का निकास हो अर्थात् मूल तने या उपशाखा का वह स्थल जो किसी शाखा का उद्गम स्थल हो। ऐसे में यह कारीगर इस माला के मनकों (दानों) के लिए इन स्थानों को चयनित करते हुए सावधानी पूर्वक इसकी टिकली तैयार करते हैं। कारीगरों अथवा संतों के लिए ऐसी माला को तैयार करना श्रम एवं समय साध्य कार्य होता है। पौंधे की गाँठ (जोड़) के स्थान वलयाकार (सुदर्शन चक्र) की भाँति होने तथा इसी प्रकार से नृसिंह शालिग्राम का स्वरूप होने कारण ऐसी कण्ठियों को संभवत: शालिग्राम या सुदर्शन कण्ठी सम्बोधित किए जाने की परम्परा है। तुलसी की कण्ठी-माला के साथ-साथ ऐसे प्रयोगों द्वारा

प्रयोगों द्वारा कण्ठा तैयार करना ब्रज की इस महत्त्वपूर्ण परम्परा का अपना वैशिष्ट्य है। जहाँ प्राय: वैष्णवों द्वारा अपनी-अपनी सम्प्रदाय में प्रचलित मान्यतानुसार कण्ठी धारण करने की सामान्य परम्परा देखने को मिलती है वहीं संत समाज में इसका वैविध्य देखते ही बनता है।

स्थानीय कण्ठी-माला की परम्परा में कुछ विशिष्ट प्रकार की मालाएं जैसे ***महामंत्र कण्ठा, सर्पाकार कण्ठी एवं स्वगुरु नाम कण्ठा*** सहित ***राधा-कृष्ण अंकन वाले कण्ठा*** भी देखे जाते है। कुछ विशिष्ट सन्त अथवा महन्त तुलसी की ***पंचमाला*** भी धारण करते हैं। संत वृन्दों के कण्ठ में शोभायमान तुलसी की इन मालाओं का वैविध्य देखते ही बनता है। चैतन्य सम्प्रदाय से जुड़े संत-वैष्णव तुलसी एवं सफेद चंदन से तैयार महामंत्र कण्ठा धारण किए देखे जा सकते हैं; जिसमें **हरे कृष्ण हरे राम ...** महामंत्र अंकित रहता है (**चित्र-१३, पृ. ५२**) इसमें प्राय: इन नामाक्षरों की १६ चौकियाँ लगी होती हैं। इसी तरह राधाकृष्ण संयुक्ताक्षर और राधा एवं कृष्ण नामाक्षर के पृथक-पृथक कण्ठा भी हिन्दी एवं बंगला लिपि में दिखने को मिलते हैं। कण्ठों की इस परम्परा में राधाबल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव ***राधाबल्लभ श्री हरिवंश*** (**चित्र-१२,पृ.५२**) तथा हरिदासी सम्प्रदाय के संतगण ***कुञ्जबिहारी श्रीहरिदास*** (**चित्र-११,पृ.५२**) नामाक्षर से युक्त कण्ठा धारण किए देखे जा सकते हैं।

वर्तमान में राधाकृष्ण की आकृति वाले पत्ता (लाकेट) भी प्रचलन में हैं। (**चित्र-१४, पृ.५२**) यहाँ कारीगरों द्वारा कण्ठ में धारण किए जाने वाली कण्ठियों से इतर तुलसी-काष्ठ द्वारा जाप हेतु १०८ दानों की माला तथा घूमते-फिरते भजन करने हेतु सुमिरनी एवं सर्पाकार माला भी तैयार की जाती है। २७ दानों से तैयार सुमिरनी (**चित्र-९, पृ.५२**) जहाँ भ्रमण करते हुए भजन हेतु प्रयुक्त होती हैं, वहीं जाप के लिए प्राय: १०८ दानों की माला तैयार की जाती है, जबकि सर्पाकार माला में दानों का स्वरूप प्रथम दाने के उपरान्त क्रमश: मोटा होता जाता है। कण्ठी मालाओं के इस वैविध्य में एक नाम पंचमाला (पाँच लड़ियों से युक्त) का भी मिलता है जिसे महन्त अथवा विशिष्ट संत धारण करते हैं। (**चित्र-१०, पृ.५२**)

ब्रज एवं पौराणिक सन्दर्भों में तुलसी–

पुराणों में तुलसी की महिमा के विस्तृत विवरण मिलते हैं। यहाँ तुलसी को परम कल्याणकारी और सौभाग्य प्रदायक बताया गया है। तुलसी का एक प्रमुख नाम 'वृन्दा' भी है। ब्रज में प्रचलित एक जनश्रुति के अनुसार राजकन्या सत्यवती ही वृन्दा थीं। इन्होंने अपनी तपस्या से श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट कर लिया। वृन्दा ने वर माँगा– ''मैं तुम्हारी लीला के लिये एक निकुंज बनाऊँगी। उस उपवन में छः ऋतुएँ एक साथ विलसित होंगी। विहंगों के कलरव से वह क्षेत्र कूजित होगा। तुम प्रतिदिन उस निकुंज में अपनी कान्ता के साथ विहार किया करना। बस इतना ही दे दो।'' श्रीकृष्ण ने तथास्तु तो कह दिया परन्तु जिज्ञासा की कि 'इससे तुम्हें क्या मिलेगा?' वृन्दा ने कहा ''आप विहार से आनन्दित होंगे और मुझे उससे आनंद मिलेगा! क्या यह कम है? आप वचन दें कि उस कुंज उपवन से आप कभी जायेंगे नहीं।'' वृन्दा की मनोकामना पूरी हुई। वृन्दा के वन–निकुंज में ही राधा कृष्ण की मधुर लीला संपन्न होती है। यह वन ही वृन्दावन है। स्थानीय मान्यतानुसार ***वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी*** और कृष्णजीवनी–ये देवी तुलसी के आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्र के रूप में परिणत है–

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी तुलसी च कृष्ण जीवनी।।

इस 'नामाष्टक' का पाठ कर तुलसी की पूजा करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और भगवान् विष्णु के परम धाम वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को देवी तुलसी का मंगलमय प्राकट्य हुआ था। इस दिन तुलसी पूजन का विशेष मा हात्म्य है। घृत का दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्पों के साथ–***'श्री हीं क्लीं ऐ वृन्दावन्यै स्वाहा'*** के मंत्र का उच्चारण कर के विधिपूर्वक तुलसी की पूजा की जाती है। तुलसी का यह दशाक्षर मंत्र परम कल्याणकारी है जिसमें लक्ष्मी बीज– (श्रीं), माया बीज (हीं), कामबीज (क्लीं) और वाणी बीज (ऐं)– इन बीजों का पूर्व में उच्चारण करके 'वृन्दावनी' इस शब्द के अन्त में (डे) विभक्ति लगायी और अन्त में वह्निजाय (स्वाहा) का प्रयोग

किया जाता है। इस मंत्र के उच्चारण करने से देवी तुलसी शीघ्र ही प्रसन्न होकर अपनी सहज कृपा प्रदान करती हैं। देवी तुलसी को स्वयं भगवान् विष्णु अपने मस्तक तथा वक्ष:स्थल पर धारण करते हैं, इसलिये वैष्णव सम्प्रदायों में तुलसी की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। वैष्णव देवालयों में ठाकुरजी के समक्ष ऊँचा थामरा बनाकर तुलसी के पौधे को स्थापित किया जाता है। ठाकुरजी के प्रसाद और पंचामृत में तुलसी-दल डालना आवश्यक है। तुलसी-दल के बिना ठाकुरजी भोग सामग्री को स्वीकार नहीं करते हैं। तुलसी की सूखी लकड़ी से कण्ठी और मालाएँ बनायी जाती हैं। कण्ठी वैष्णवजन अपने गले में धारण करते है और तुलसी की माला से हरिनाम जप किया जाता है।

स्थानीय परम्परा में तुलसी की कण्ठी धारण करना एवं भजन के लिए इसका उपयोग करने हेतु गुरुजनों द्वारा विधान निश्चित किए गए है। गुरु द्वारा शिष्य को कण्ठी प्रदान (दीक्षित) करते समय इसके उपयोग में सावधानी हेतु आवश्यक दिशा निर्देश दिए जाते हैं। इसके उपयोग की जानकारी देते समय कहीं-कहीं तो तुलसी की माला की प्रतिकृति के रूप में अभ्यास हेतु सामान्य काष्ठ की माला प्रदान किए जाने की परम्परा भी देखी जाती है। तदोपरान्त गुरु द्वारा शिष्य के आचरण की परख लेने के उपरान्त तुलसी-काष्ठ की पवित्र माला धारण करने की अनुमति दी जाती है। मान्यता है, मृत्यु के समय जिस के मुख में तुलसी के जल की एक बूँद भी चली जाती है वह निश्चित ही भगवान् विष्णु के लोक को जाता है। विश्व को पवित्र करने वाली देवी तुलसी जीवन्मुक्त हैं। मुक्ति और भगवान् श्रीहरि की भक्ति प्रदान करना इनका मूल स्वभाव है। देवी तुलसी सर्वपूज्या और शिरोधार्या हैं। ब्रजमण्डल भक्ति की भूमि है। इस पावन धरा पर एक से बढ़कर एक तपस्वी सम्प्रदायाचार्य, संत-महात्मा अवतरित हुए जिन्होंने श्रीकृष्णकी इस क्रीड़ा भूमि का यशोगान करते हुए इसका महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ाया।

रसोपासना साहित्य में तुलसी और इसके काष्ठ से बनने वाली माला (कण्ठी) की विद्यमानता काफी पूर्व से दर्शित होती है। विक्रम की १६वीं शताब्दी में विद्यमान राधाबल्लभ सम्प्रदायाचार्य गो. हित हरिवंश महाप्रभु भगवद भक्ति की उच्चावस्था का वर्णन करते हुए एक स्थल पर कहते हैं-

लिखन्ति भुज मूलतो न खलु शंख चक्रादिकं।
विचित्र हरि मन्दिरं न रचयन्ति भाल स्थले।।
लसत्तुलसि मालिकां दधति कण्ठ पीठे न वा।
गुरोर्भजन विक्रमात्कइहते महावृद्धयः।। [१]

अर्थात् गुरु द्वारा प्रदत्त भजन (गुरु-दीक्षा) की साधना के फलस्वरुप प्राप्त पराक्रम अथवा गुरु सेवा पराक्रम से जो व्यक्ति भक्ति के आचरण की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करता है, जिसमें उसे शंख, चक्र, तिलक और तुलसी की कण्ठी-माला तक की भी सुधि नहीं रहती। ऐसे भक्त शूरवीर महानुभावों की तुलना भला किससे की जा सकती है? उक्त विवरण भले ही यहाँ सीधे तौर पर तुलसी की कण्ठी और उसकी महत्ता से न जुड़ा हो तथापि १६वीं शताब्दी में रचित इस प्राचीन ग्रन्थ से मिलने वाला यह विवरण तत्कालीन समय में इस परम्परा की विद्यमानता का बोध कराने वाला है। राधाबल्लभ सम्प्रदाय की इस परम्परा में आगे तुलसी-काष्ठ से बनी माला और कण्ठियों का महत्त्व विभिन्न कालक्रमों में रचित प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों से ज्ञात होता है। चतुर्भुज दास जी द्वारा सम्वत् १६८६ के लगभग रचित ***द्वादश यश*** ग्रन्थ में तुलसी की माला धारण करने एवं उसके महत्त्व विषयक जानकारी प्रदान की गई है—

तुलसी की माला जु बनावै हरहि चढ़ाय सु आपुन नावै।
ज्यौं द्विज सदा जनेऊ धरई, माला बिन जलपान न करई।। [२]

द्वादश यश ग्रंथ के एक धर्मविचार यश में रचना काल सम्वत १६८६ अंकित है। उनके द्वारा सभी यशों की रचना एक साथ हुई या कुछ यश बाद में लिखे गए यह अनुसंधान का विषय है। धर्म, विचार, यश की पुष्पिका निम्नवत है—

सम्वत सोरह सौ चौरासी अधिक द्वै बरस सिरानी जू।
मुरलीधर वर भक्ति चतुर्भुज दास प्रताप बखानी जू।। [३]

इसी सम्प्रदाय में गोस्वामी ***ब्रजलालजी*** ने तुलसी-माला के सन्दर्भ में इसका महत्त्व बताते हुए अन्य माला धारण करना निषेध किया है-

---

*१. गोस्वामी हितहरिवंश महाप्रभु कृत राधासुधानिधि सम्वत् १७१२ की हस्तलिखित प्रतिलिपि। (**चित्र-२०,पृ.५४**) श्लोक ८१*

*२. चतुर्भुजदासजी कृत द्वादश यश के अंतर्गत शिक्षा सार यश छन्द १३, (**चित्र-१८,पृ.५४**)*

३. धर्म विचार यश की पुष्पिका जिसमें रचनाकाल अंकित है।

वृन्दाया एव माला मुरसि विनिहितां कण्ठ लग्ना दधाना।
नान्यामक्षादि मालां हरि शरण गतः प्रेम तो धारयेत।।[१]

१६वीं शताब्दी में ही संत प्रवर *हरिराम व्यास* ने तुलसी-माला की महत्ता से अवगत कराते हुए स्ववाणी साहित्य में इसे यथोचित स्थान प्रदान किया-

मोहि वृन्दावन रज सौं काज।
माला-मद्रा श्याम वन्दनी तिलक हमारौ साज।।[२]

राधाबल्लभ सम्प्रदाय में तुलसी की माला के सन्दर्भ में विस्तृत विवरण प्राचीन वाणीकारों द्वारा समय-समय पर अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में अंकित किए गए। १८वीं शताब्दी में विद्यमान रसिक संत *अतिबल्लभ* जी द्वारा रचित हस्तलिखित पंक्तियों में उक्त विषयक उल्लेख उद्घाटित होते हैं-

जुगल मंत्र जप तुलसी दाम। तिलक प्रसादी मुद्रा नाम।।[३]

चैतन्य सम्प्रदाय साहित्य में तुलसी के प्रत्येक पक्ष को लेकर महत्त्वपूर्ण विवरण मिलते हैं। श्रीगोपाल भट्ट द्वारा रचित *हरिभक्ति विलास* में वैष्णव-आचरण सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारियों के साथ तुलसीदल, काष्ठ, मृत्तिका एवं तत्सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विभिन्न पुराण, संहिताओं से संकलन किया गया है। इस सम्प्रदाय में तुलसी-कण्ठियों के वैविध्य के साथ ही हिन्दी एवं बंगला अक्षरों में राधा-कृष्ण नामाक्षर अथवा इनकी प्रतिकृतियों का अंकन देखते ही बनता है।(*चित्र-१३,१५-अ, पृ.५२*) किसी चैतन्य सम्प्रदायी भक्त द्वारा वृंदावन में किसी गौड़ीय संत के समक्ष प्रेषित एक प्राचीन हस्तलिखित दस्तावेज से यह ज्ञात होता है कि वृंदावन आकर कण्ठी बंधाने (गुरुदीक्षा प्राप्त करने) की परंपरा ब्रजमण्डल में काफी पूर्व से विद्यमान रही है। (*चित्र-२५ पृ.५५*)

निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीकेशवकाश्मीरी भट्ट द्वारा रचित *क्रम दीपिका* ग्रंथ में तुलसी के संदर्भ में विस्तृत जानकारियां प्रदान की गई हैं। *रामानुज*

---

१. *गो॰ब्रजलाल जी कृत सेवा विचार यश श्लोक ४८ पाण्डुलिपि (चित्र-२७, पृ.५५)*
२. *व्यास वाणी पद सं॰ ११३*
३. *अतिबल्लभ जी कृत पदावली पाण्डुलिपि (चित्र-१९, पृ.५४)*

सम्प्रदाय में तुलसी की महत्ता को अत्यधिक पवित्र भाव से उच्च स्थान दिया गया है। यहाँ वैष्णवजन केवल भजन एवं जाप के समय ही कण्ठी धारण करते है। *बल्लभ कुल* सम्प्रदाय में तुलसी-कण्ठी एवं तिलक का विशेष माहात्म्य है। मध्यकाल सामाजिक एवं सांस्कृतिक विसंगतियों का दौर था। जिससे ब्रजमंडल भी प्रभावित हुआ। कण्ठी-माला एवं तिलक के संदर्भ में बिटठ्लनाथजी के चतुर्थ लालजी श्री गोकुलेश जी को पर्याप्त संघर्ष झेलने पड़े। गोकुल सहित समस्त ब्रजमंडल में प्रचलित यह लोकोक्ति ***गोकुलनाथ बड़े महाराज तिलक-माल की राखी लाज।*** ब्रजवासियों की उनके प्रति सम्मान एवं श्रद्धा की द्योतक है। सम्प्रदाय-साहित्य से ज्ञात होता है कि जहाँगीर के काल में राजाज्ञा द्वारा वैष्णवों के कण्ठी-तिलक को प्रतिबंधित किया था। यहाँ इस घटनाक्रम का विस्तृत उल्लेख मिलता है। तत्कालीन विषम परिस्थितियों में श्री गोकुलनाथ जी ने कश्मीर की कठिन यात्रा करके कण्ठी और तिलक के पक्ष में जहाँगीर को समझाया। उक्त संदर्भ की विस्तृत जानकारी आगामी अध्यायों में उल्लिखित है।

तुलसी एक पवित्र पौधे से कहीं अधिक देवी के रूप में प्रतिष्ठित है। घर के आंगन में तुलसी के पौधे को स्थापित करना शुभ माना जाता है। गृहणियाँ प्रातःकाल तुलसी को स्नेहपूर्वक जल से सींचकर उसकी प्रदक्षिणा करती हैं और संध्या के समय भक्तिभाव से दीप जलाकर पूजा अर्चना करती हैं। गृहणियों के लिये तो वह सबका मंगल करने वाली 'तुलसी-माता' है, जो उनके मन की बात सुनती हैं और उनके सुख-दुख की प्रत्यक्ष साक्षी हैं। वस्तुतः तुलसी भगवान् श्रीहरि विष्णु की प्रिया हैं। तुलसी की मान्यता भगवान् विष्णु की पत्नी के रूप में है। प्रायः गृहणियाँ तुलसी की वन्दना करते हुए यह गीत गाती हैं-

नमो नमो तुलसा महारानी नमो नमो।
नमो नमो हरि की पटरानी नमो नमो।।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में तुलसी के कई जन्मों की कथाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार राजा धर्मध्वज की रानी माधवी के गर्भ से कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन अत्यन्त सुन्दर दिव्य कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम 'तुलसी' रखा गया। तुलसी ने बाल्यावस्था में ही वन

में जाकर दीर्घकाल तक भगवान् विष्णु की कठिन तपस्या की। बाद में उसका गंधर्व विवाह दानव राज शंखचूड़ के साथ हुआ। दानवराज शंखचूड़ का वध करने के लिये उसकी पत्नी तुलसी का सतीत्व नष्ट करना परम आवश्यक था, इसलिये स्वयं भगवान विष्णु ने शंखचूड़ का छद्म रूप धारण कर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया, जिससे शंखचूड़ का वध करना संभव हो सका। परन्तु सतीत्व के नष्ट होने से दुखी तुलसी ने भगवान को शाप देते हुए कहा- ''नाथ! आपने छलपूर्वक मेरे सतीत्व धर्म को नष्ट कर दिया है। आप अवश्य ही पाषाण हृदय है, तभी तो इतने निर्दयी बन गये। अत: देव! मेरे शाप से पाषाण रूप होकर आप पृथ्वी पर रहें।'' तुलसी के शाप को स्वीकार करते हुए भगवान् विष्णु ने कहा- ''देवी तुम मेरे लिये वन में रहकर बहुत दिनों तक तपस्या कर चुकी हो। उस समय तुम्हारे लिए शंखचूड़ भी तपस्या कर रहा था। वह मेरा ही अंश था। अपनी तपस्या के फल से तुम्हें स्त्री रूप में प्राप्त करके वह गोलोक में चला गया, अब मैं तुम्हारी तपस्या का फल देना उचित समझता हूँ। तुम्हारा यह शरीर नदी रूप में परिणित हो 'गण्डकी' नाम से प्रसिद्ध होगा। तुम्हारे केश पवित्र वृक्ष होंगे। तुम्हारे केश से उत्पन्न होने के कारण तुलसी के नाम से उनकी प्रसिद्धि होगी। तीनों लोकों में देवताओं की पूजा के कार्य में आनेवाले जितने भी पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें तुलसी प्रधान मानी जाएगी। स्वर्ग लोक, मृत्यलोक, पाताल तथा बैकुण्ठ लोक में तुम सर्वत्र मेरे सन्निकट रहोगी। मैं तुम्हारे शाप को सत्य करने के लिये पाषाण शालिग्राम बनकर रहूँगा। गण्डकी नदी के तट पर मेरा वास होगा। मेरे साथ सदैव तुम्हारी पूजा होगी। गण्डकी नदी के तट पर पाये जाने वाले चिकने काले गोलाकार पवित्र पत्थर शालिग्राम कहे जाते हैं, जो भगवान् विष्णु के साक्षात् स्वरूप हैं। शालिग्राम शिला पर तुलसी-पत्र अर्पित करने का विशेष माहात्म्य है। कार्तिक मास में देवोत्थान एकादशी के दिन शालिग्राम शिला के संग तुलसी का विवाह कराया जाता है। ब्रज के देवालयों और घरों में वैष्णवजन विधिपूर्वक तुलसी-शालिग्राम का विवाहोत्सव मनाते हैं। तुलसी-शालिग्राम विवाह कराने से कन्याओं के मंगली दोष एवं वैधव्य दोष पूर्णत: समाप्त हो जाते हैं। ब्रज में तुलसी को पौराणिक मान्यताओं के विपरीत

भगवान विष्णु की पत्नी न मानकर श्रीकृष्ण की पत्नी माना गया है और भगवान विष्णु के प्रतीक शालिग्राम शिला को भी श्रीकृष्ण का ही रूप माना गया है। ब्रज की नारियों द्वारा कार्तिक मास में तुलसी की विशेष रूप से पूजा अर्चना की जाती है। तुलसी शालिग्राम विवाह में भी तुलसी सम्बन्धी गीत अनुष्ठान के रूप में गाये जाते हैं। ब्रज के लोकगीतों में तुलसी का श्रीकृष्ण की पत्नी के रूप में उल्लेख मिलता है।[१]

उक्त सन्दर्भ में एक कथा इस प्रकार मिलती है कि प्राचीन काल में कैलासपुर में धर्मदेव नामक विष्णु भक्तिपरायण एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्री का नाम वृन्दा था। वृन्दा धर्मचारिणी और पतिव्रता थीं। एक दिन धर्मदेव ब्राह्मण की सभा में जाकर कृष्ण का गुणगान कर रहे थे। इधर भोजन का समय बीत गया, वृन्दा अपने घर में अभ्यागत अतिथि की पूजा करके मनोहर कैलाश शिखर पर प्रतिवासियों के घर घूमने चली गई। इसी बीच में धर्मदेव अपने घर आये और पत्नी को चंचल जानकर बहुत बिगड़े। वृन्दा पर नजर पड़ने के साथ ही उन्होंने शाप दिया कि 'तू क्षुधार्त्ता होकर अपना घर छोड़ इधर उधर घूमती फिरती है, इस कारण राक्षसी शरीर धारण कर।' वृन्दा उसी समय राक्षसी बनकर पृथ्वी पर आई और सब जन्तुओं को खाने लगी। किन्तु पूर्व स्मृति के कारण वह गाय, ब्राह्मण और वैष्णव आदि को नहीं मारती थी। अनेक जीवों के नष्ट हो जाने से पृथ्वी अस्थिमालिनी हो गई। जब वृन्दा को और कोई जन्तु न मिला तो उसने ३ दिन उपवास किया। बाद में जीवों के अन्वेषण में वह कैलाश की तरफ गई। वहां उसने ७ दिन अनाहार रहकर शरीर त्याग दिया। उस दौरान जब महादेव पार्वती के साथ भ्रमण करते वहां पहुंचे तो उन्होंने देखा वहां वृन्दा मृत अवस्था में पड़ी थी। महादेव बोले- यह रूपवती वृन्दा धर्मदेव की पत्नी है। उसने अभिशाप वश राक्षसी का रूप धारण करने के बाद भी आज तक ब्राह्मण हत्या नहीं की। अतः उसका शरीर निष्फल रहना उचित नहीं है। हमारे वचनानुसार यह वृन्दा पृथ्वी पर वृक्ष के रूप में जन्म लेगी और सभी की प्रेमभाजना होगी। जब यह वृक्ष के रूप में होगी तो इसके पत्ते श्रीविष्णु पर अर्पित किये जायेंगे। इसके

---

१. ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड

पत्तों के बिना मणिमुक्ता आदि किसी भी बहुमूल्य पदार्थ से विष्णु की पूजा संभव नहीं हो सकेगी। यह पवित्र वृक्ष तुलसी के नाम से प्रसिद्ध होगा। पार्वती और हम इसके अधिष्ठात्री देवता होंगे। कार्तिक मास की अमावस्या तिथि पृथ्वी पर इसके वृक्ष रूप में उत्पन्न होने का समय माना गया है।[१] पुराणों में *तुलसीदल, तुलसीमृत्तिका, तुलसी मंजरी एवं तुलसी-काष्ठ* के पृथक-पृथक विधान बताए गए हैं। सनातन संस्कृति में तुलसी को मात्र एक पौधा न मानकर देवी के रूप में पूजित किया गया है। विभिन्न पुराणों में तुलसी के उक्त सन्दर्भों को लेकर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किए गए है।

स्कन्द पुराण के अनुसार तुलसी का दर्शन करने से प्राणी मात्र के सब पाप छूट जाते हैं, यह स्पर्श करने से देह को पवित्र करती है, जिनकी वन्दना करने पर रोग समूह नष्ट होते हैं। जिनको जल से सींचने पर रोग का भय अन्तर्धान होता है। जो रोपिता (लगाए जाने पर) रोपणकारी के कुल सहित उसका भगवान से सम्बन्ध स्थापित करती है और जिनको कृष्ण के चरणकमलों में अर्पण करने पर बैकुण्ठ प्राप्ति होती है। ऐसी कल्याणकारी तुलसी देवी को नमस्कार है-

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी, स्पृष्टा वपुः पावनी,
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता,
न्यस्ता तच्चरणे विभुक्तिफलदा, तस्यै तुलस्यै नमः।। [२]

जो पुरूष नित्य नौ प्रकार से तुलसी की उपासना करते हैं- उनको हजारों करोड़ों युगों तक श्रीहरि के धाम में वास का सौभाग्य मिलता है। कलिकाल में तुलसी रोपण करने पर, उसकी जड़ जितनी फैलती है, रोपण करने वाले का पुण्य भी उतना ही हजार करोड़ गुना फैलता है। पृथ्वी में तुलसी रोपण करने पर, उनकी शाखा उपशाखा, बीज, फूल और फल की जितनी वृद्धि होती हैं, रोपणकारी के वंश में उत्पन्न भावी और मृत पुरूष-गण, सभी सहस्रयुग तक दिव्य धाम में वास करते है-

---

१. *वृहद्धर्म पुराण अध्याय-८*

२. *स्कन्द पुराण, अवन्ती खण्ड*

नवधा तुलसीं नित्यं ये भजन्ति दिने दिने।
युगकोटि-सहस्त्राणि ते वसन्ति हरेगृहे।।
रोपिता तुलसी यावत कुरुते मूल-विस्तरम्।
तावत्कोटि सहस्त्रन्तु तनोति सुकृतं कलौ।।
यावच्छाखां-प्रशाखाभिर्वीज-पुष्पैः फलैर्मुने।
रोपिता तुलसी पुम्भिर्वर्द्धते वसुधा-तले।।
कुले तेषान्तु ये जाता ये भविष्यन्ति ये मृताः।
आकल्पं युग-साहस्त्रं तेषां वासो हरेर्गृहे।। [१]

कलियुग में पृथ्वी पर जो पुरूष हरि को प्रसन्न करने के लिये तुलसी चयन वा रोपण करते हैं, उन सब पुरूषों के कर-पल्लव धन्य है। कलियुग में तुलसी दान, तुलसी ध्यान, तुलसी द्वारा हरि-पूजा और तुलसी की महिमा कीर्तन करने से तुलसी देवी मनुष्य के पाप भस्म कर देती हैं —

तुलसी ये विचिन्वन्ति धन्यास्तत्-करपल्लवाः।
केशवार्थे कलौ ये च रोपयन्तीह भूतले।।
स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्च्चने।
तुलसी दहते पापं रोपणे कीर्त्तने कलौ।। [२]

तुलसी के पौधे को स्वच्छ जल द्वारा नियमित सींचने से, सृष्टि में जब तक तारा-चन्द्र विद्यमान हैं, तब तक प्राणी क्षीरसागर में शयन करने वाले श्रीहरि का पावन सान्निध्य प्राप्त करता है। कांटों से व काष्ठ द्वारा बाड़ लगाकर तुलसी को सुरक्षित करना पुण्यकारक है। जब तक यह कण्टकावरण तुलसी के चारों ओर विद्यमान रहता है। तब तक आवरण दाता के तीन कुल ब्रह्मा धाम में वास करते है। तुलसी के चारों ओर वेष्टन करने पर तीन कुल के सहित हरि की भक्ति प्राप्त होती है। ***वृहन्नारदीय ग्रंथ*** के यज्ञध्वजोपाख्यान में लिखा है कि संसार समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों के लिए तुलसी की सेवा, साधुओं का संग और हरि-भक्ति, यह तीन अत्यन्त दुर्लभ है। पुराणों में लिखा है कि दक्षिणा प्रदान करने और अनेक भांति के यज्ञ आयोजनों द्वारा जो फल प्राप्त होता

---

१ *स्कन्द पुराण तुलसी माहात्म्य*

२. *स्कन्द पुराण, अवन्ती खण्ड*

है। वही फल श्रीहरि प्रिया तुलसी का रोपण करने पर करोड़ों गुना हो जाता है। तुलसी प्रदान करने वाले और तुलसी के रोपण करने वाले दोनों को अक्षय लोक की प्राप्ति होती है—

तुलस्यां सिञ्चयेद्यस्तु चुलुकोदकमात्रकम्।
क्षीरोदशायिना सार्द्धं वसेदाचन्द्रतारकम्।।
कण्टकावरणं वापि वृतिं काष्ठैः करोति यः।
तुलस्याः शृणु राजेन्द्र! तस्य पुण्य-फलं महत्।।
यावद्दिनानि सन्तिष्ठेत् कण्ठकावरणं प्रभो।
कुल-त्रयत्युतस्तावत्तिष्ठेद्ब्रह्मपदे युगम्।।
प्राकारकल्पको यस्तु तुलस्या मनुजेश्वर।
कुल-त्रयेण सहितो विष्णोःसारूप्यतां व्रजेत्।।
दुर्ल्लभा तुलसी-सेवा दुर्ल्लभा संगतिः सताम्।
दुर्ल्लभा हरि-भक्तिश्च संसारार्णवपातिनाम्।।
यत् फलं क्रतुभिः स्विष्टैः समाप्तवरदक्षिणैः।
तत् फलं कोटिगुणितं रोपयित्वा हरेः प्रियाय्।।
तुलसीं ये प्रयच्छन्ति सुराणामर्च्चनाय वै।
रोपयन्ति शुचो देशे तेषां लोकोऽक्षयः स्मृतः।।[१]

जिस घर में तुलसी विराजित होती है और जहाँ नित्य तुलसी की पूजा सेवा होती है। वहाँ सदैव मंगल बना रहता है-

पूज्यमाना च तुलसी यस्य वेश्मनि तिष्ठति।
तस्य सर्व्वाणि श्रेयांसि वर्द्धन्तेऽहरहर्द्विजाः।।[२]

तुलसी सेवा मनवांछित फलदायक है। चारों वर्णों में विशेषकर चारों आश्रमों में नर-नारी कोई भी क्यों न हो; तुलसी देवी की पूजा करने से देवी उसको मनवांछित फल प्रदान करती है। तुलसी रोपण, सेवन, दर्शन और स्पर्श द्वारा पवित्रता प्राप्त होती है और यत्न सहित उपासना करने से सब अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं।

---

१. *वृहन्नारदीय, यमभागीरथ संवाद एवं यज्ञध्वजोपाख्यान*

२. *वृहन्नारदीये यज्ञध्वजोपाख्यान*

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां विशेषतः।
स्त्रीणाञ्च पुरूषाणांच पूजितेष्टं ददाति हि।।
तुलसी रोपिता सिक्ता दृष्टा स्पृष्टा च पावयेत।
आराधिता प्रयत्नेन सर्व्वकामफलप्रदा।।[१]

देव मंदिरों में तुलसी का पौधा मात्र शोभाकारक नहीं अपितु पुराणों में इसके विशेष महत्त्व बताए गए हैं। जगत्पति हरि, तुलसी-वन को छोड़कर विशेषत: कलिकाल में अन्य किसी वस्तु से प्रसन्न नहीं होते। कलिकाल में हरि, सहस्र तीर्थ-क्षेत्र और अखिल भूदर (पर्वत) त्याग कर एकमात्र तुलसी वन में ही नित्य अधिष्ठान करते है और जो तुलसी-वन का दर्शन करते हैं, वे परम पद को प्राप्त करते है। जहां फलित धात्रीवृक्ष, हरि-मूर्ति, तुलसी-कानन और वैष्णवजन विद्यमान नहीं होते, वह स्थल शमशान के समान है। जो कलियुग में पृथ्वी पर हरि की प्रीति के लिये तुलसी रोपण करते हैं, यमराज व उनके दूत क्रोधित होने पर भी ऐसे भक्त का अनिष्ट नहीं कर सकते। विशेषत: श्रावणी नक्षत्र के योग में तुलसी रोपण करना चाहिये। ऐसा होने पर हरि उस रोपण करने वाले के सहस्र अपराध क्षमा करते हैं। जिस देव मन्दिर अथवा पुण्यभूमि में पवित्र तुलसी का वृक्ष लगाया जाता है, वे सभी स्थान चक्रधर हरि के तीर्थ स्वरूप है। घट या यन्त्र घटी-जल धारा द्वारा तुलसी के सींचने से तीनों लोक की प्रीति साधित होती है-

रति वध्नाति नान्यत्र तुलसीकाननं विना।
देव-देवो जगत्स्वांमी कलिकाले विशेषतः।।
हित्वा तीर्थ-सहस्त्राणि सर्व्वानपि शिलोच्चयान्।
तुलसी-कानने नित्यं कलौ तिष्ठति केशवः।।
निरीक्षिता नरैर्यैस्तु तुलसी-वन-वाटिका।
रोपिता यैश्च विधिना सम्प्राप्तं परमं पदम्।।
न धात्री सफला यत्र न विष्णुस्तुलसी-वनम्।
तत् श्मशानसमं स्थानं सन्ति यत्र न वैष्णवाः।।
केशवार्थे कलो ये तु रोपयन्तीह भूतले।
किं करिष्यत्यसन्तुष्टो यमोऽपि सह किंकरैः।।

---

१. *अगस्त संहिता - तुलसी महात्म्य*

तुलस्यारोपणं कार्य्यं श्रवणेन विशेषतः।
अपराध-सहस्त्राणि क्षमते पुरुषोत्तमः।।
देवालयेषु सर्व्वेषु पुण्यक्षेत्रेषु यो नरः।
वापयेत्तुलसीं पुण्यां तत्तीर्थं चक्रपाणिनः।।
घटैर्यन्त्रघटीभिश्च सिञ्चितं तुलसी-वनम्।
जल-धाराभिर्विप्रेन्द्र! प्रीणिंत भुवनत्रयम्।।[१]

पुराणों में तुलसी-पत्र को सभी प्रकार के पुष्प एवं पत्रों में श्रेष्ठ बताया गया है। तुलसी-दल के द्वारा श्रीहरि का पूजन-आराधन प्राणीमात्र के लिए सौभाग्य प्रदायक है। स्कन्द पुराण में लिखा है- हे देवर्षि! एक मात्र तुलसी-पत्र द्वारा हरि की पूजा करने पर समस्त पुष्प और समस्त पत्र से पूजा करने का फल मिल जाता है-

यत् फलं सर्व्वपुष्पेन सर्व्वपत्रेषु ।
नारद! तुलसी-दल मात्रेण प्राप्यते केशवार्चने।।[२]

प्रभु को तुलसी-दल के समक्ष एक से बढ़कर एक सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्प भी स्वीकार नहीं। मालती और कमल को छोड़कर यदि एकमात्र तुलसी-पत्र लेकर भक्ति सहित हरि की पूजा की जाय तो उससे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका वर्णन करने में अनन्त देव भी समर्थ नहीं-

त्यक्त्वा तु मालती-पुष्पं मुक्त्वा चैव सरोरूहम् ।
गृहीत्वा तुलसी-पत्रं भक्त्या माधवमर्च्चयेत।।[३]

तुलसी के पौधे लगाना तथा उसके पत्तों (तुलसी-दल) द्वारा हरि-सेवा करने वाले लोगों के समक्ष यमराज व उनके दूत जाने की भी नहीं सोचते। स्कन्द पुराण में लिखा है- जो पुरूष तुलसी-दल से दुःख नाशन कृष्ण की पूजा करते हैं, यमराज व उनके अनुचर क्रोधित होने पर भी उनका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते-

किं करिष्यति संरुष्टो यमोऽपि सहकिङ्करैः।
तुलसी दलेन देवेशः पूजितो येन दुःखहा।।[४]

---

१. *स्कन्द पुराण - तुलसी प्रकरण*
२. *स्कन्द पुराण - तुलसी प्रकरण*
३. *पद्मपुराण— वैशाख महात्म्य*
४. *स्कन्द पुराण— अवन्ती खण्ड*

हे वैश्य! जो पुरूष तुलसी का वृक्ष आरोपण कर उसके पत्र से हरि की पूजा करते हैं वे चतुर्भुज हरि के अधिष्ठित धाम में सुख पूर्वक वास करते हैं-

आरोप्य तुलसी वैश्य! सम्पूज्य तद्दलैर्हरिम्।
वसन्ति मोदमानास्ते व्रत्र देवश्चतुर्भुजः।। [१]

तुलसी-काष्ठ से बनी माला का वैष्णवों की दैनिक दिनचर्या में महत्वपूर्ण स्थान है। स्थानीय सन्त समाज में तुलसी की कण्ठी को परम पवित्र एवं इसे धारण करना परम आवश्यक माना गया है। जो तुलसी-काष्ठ की बनी माला हरि को अर्पण करके फ़िर स्वयं धारण करते हैं वे निसंदेह भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ हैं। जो मूर्ख तुलसी-काष्ठ की माला भगवान को बिना प्रदान किए धारण करते हैं वे निसंदेह नरक में गिरते हैं। माला गूंथकर पंचगव्य से धोवे, फिर उससे मूल मंत्र जपकर आठ बार गायत्री का जप करना चाहिए, फिर धूप का धुआं स्पर्श कराकर सद्योजात मंत्र से भक्तिपूर्वक इस प्रकार पूजा करे। हे माले! तुम तुलसी-काष्ठ से बनाई गई हो, हम कृष्ण के भक्त आप में प्रीति प्रदर्शन करते हैं-

सन्निवेद्यैव हरये तुलसी काष्ठ-सम्भवाम।
मालां पश्चात स्वयं धत्ते सवै भागवतोत्तमः।।
हरयेनार्पयेद्यस्तु तुलसी काष्ठ-सम्भवाम्।
माला धत्ते स्वयं मूढः स याति नरकं ध्रुवम्।।
क्षालितां पञ्चगव्येन मूल मन्त्रेण मन्त्रिताम्।
गायत्र्या चाष्टकत्वो वै मन्त्रितां धूपयेच्चताम्।।
विधवत परया भक्तया सद्योजातेन पूजयेत।
तुलसीकाष्ठसम्भूते! माले कृष्ण जनप्रिये।। [२]

जो श्रीहरि को निवेदित करी हुई तुलसी की माला धारण करके भगवान की पूजा करते हैं इसके बाद वे अन्यान्य जिन सब कार्यों का अनुष्ठान करते हैं। वे सब अक्षय फल प्रदायक होते हैं-

निर्माल्यतुलसी माला-युक्तो यश्चार्च्चद्धरिम्।
यदयतकरोति तत सर्वमनन्तफलदं भवेत।। [३]

१.पद्म पुराण, तुलसी - बैकुण्ठ लोक त्रापकत्व शक्ति

२. स्कन्द पुराण— अवन्ती खण्ड

३.अगस्त संहिता माला धारण महात्म्य

अगस्त संहिता में ही एक अन्य स्थल पर जानकारी मिलती है कि तुलसी काष्ठ द्वारा जपमाला और कण्ठ माला (कण्ठी) धारण कर भगवद् सेवा करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है-

यः कुर्य्यात्तुलसी काष्ठैरक्षमाला सुरूपिणीम्।
कण्ठमालाञ्च यत्वेन कृतं तस्याक्षयं भवेत्।।[१]

श्रीकृष्ण के कण्ठ से उतारी हुई तुलसी के पत्र की बनी माला गले में धारण करने से उस माला के जितने पत्र हों (उस प्रति पत्र) से, मनुष्य दस-दस अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता है। जो पुरूष प्रतिदिन तुलसी-काष्ठ की माला धारण करते है, श्रीहरि उनको द्वारावती वास का फल देते हैं। जो पुरूष तुलसी-काष्ठ की माला हरि को निवेदन करके भक्ति सहित धारण करते हैं, उनमें कोई पाप विद्यमान नहीं रहता। देवकीनन्दन हरि उनके प्रति सदा संतुष्ट रहते हैं। तुलसी-काष्ठ की माला धारण करने वाले को प्रायश्चित नहीं करना पड़ता-

तुलसीदलजां मालां कृष्णोत्तीर्ण वहेत्तु यः।
पत्रे पत्रेऽश्वमेघानां लभते फलम्।।
तुलसी काष्ठ सम्भूतां यो मालां वहते नरः।
फलं यच्छति दैत्यारि प्रत्यहं द्वारकोदभवम्।।
निवेद्य विष्णवे मालां तुलसी काष्ठ-सम्भवाम्।
वहते यो नरो भक्त या तस्य वैनास्ति पातकम्।।
सदा प्रीतमनास्तस्य कृष्णो देवकी नन्दनः।
तुलसी काष्ठ सम्भूता यो मालां वहते नरः।।
तुलसी काष्ठ मालाभिभूषितः पुण्यमाचरेत।
पितृणां देवतानाञ्च कृतं कोटिगुणं कलौ।।[२]

कलिकाल में तुलसी-काष्ठ की बनी माला से अलंकृत होकर पुण्य कार्य और पितृ कर्म तथा दैव कर्म करने से उसका फल करोड़ गुना होता है। स्थानीय संत परम्परा में तुलसी-काष्ठ से तैयार कण्ठी की भाँति ही कानों में तुलसी-काष्ठ के दाने धारण करने की परम्परा देखी जा सकती है। पुराणों में उक्त विषयक कई उल्लेख देखे जा सकते हैं। वृहन्नारदीय पुराण में लिखा है कि

---

१. *अगस्त संहिता*

२. *गरूड़ पुराण— मार्कण्डेय की उक्ति*

कर्णों में सदा तुलसी-दल या तुलसी-काष्ठ धारण करने पर हरि कृपा के साथ ही भक्त पर किसी प्रकार का संकट विद्यमान नहीं रहता-

कर्णेन धारयेद्यस्तु तुलसीं सततं नरः।
तत्काष्ठं वापि राजेन्द्र! तस्य नास्त्युपपातकम्।। [१]

तुलसी के पौधे का प्रत्येक अंग उपयोगी है। विभिन्न पुराणों में इसके पृथक-पृथक महत्व दर्शाए गए हैं। तुलसी-काष्ठ से तैयार होने वाली कण्ठी की भाँति ही तुलसी की लकड़ी के चंदन की उपयोगिता का विधान कई स्थानीय सम्प्रदायों में प्रचलित देखा जा सकता है। हालाँकि इस परम्परा में बहुधा चंदन की लकड़ी का प्रयोग देखा जा सकता है लेकिन फिर भी तुलसी के चंदन की उपयोगिता इससे कमतर नहीं। *गरूड़ पुराण* में एक स्थल पर तुलसी-काष्ठ के चंदन का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि जो नरोत्तम नित्य प्रभु को तुलसी-काष्ठ का चंदन प्रदान करते हैं, उनका अनन्त-युग सुर पुर में वास होता है। जो कलिकाल में महाविष्णु को तुलसी-काष्ठ का चंदन अर्पण करके मालती-पुष्प से पूजा करते हैं वे फिर सांसारिक बंधनों में नहीं पड़ते-

यो ददाति हरेनित्यं तुलसी काष्ठ चंदनम्।
युगानि वसते स्वर्गे हानन्तानि नरोत्तमः।।
महाविष्णु कलौ भवत्या दत्वा तुलसि चन्दनम्।
योऽच्चयेन्मालती पुष्पैन भूयः स्तनपो भवेत।। [२]

श्री हरि को तुलसी-काष्ठ का चंदन प्रदान करने पर वह चंदन अर्च्चक के पहिले सौ जन्म के सञ्चित पाप सहर्ष ही भस्म कर डालता है। तुलसी-काष्ठ का चंदन श्रीहरि और समस्त देवताओं सहित पितरों को विशेष प्रिय है—

तुलसी काष्ठ सम्भूतं चन्दनं यच्छतो हरेः।
निद्र्दहेत पातकं सर्व्व पूर्व्वजन्मशतैः कृतम्।।
सर्व्वेषामपि देवानां तुलसीकाष्ठ-चन्दनं।
पितृणाञ्च विशेषेण सदाभीष्टं हरे यथा।। [३]

---

१. *वृहन्नारदीय- यमभागीरथ संवाद*
२. *गरूड़ पुराण, नारद धुन्धुमार नृप संवाद*
३. *गरूड़ पुराण, नारद धुन्धुमार नृप संवाद*

जो पुरूष श्रीहरि को तुलसी-काष्ठ का चंदन प्रदान करते हैं, उनके समान वैष्णव चारों लोकों में नहीं। कलियुग में हरि के देह में भक्ति सहित तुलसी-काष्ठ का चंदन लेपन करने पर भक्त हरि के समीप जाकर सुख भोग प्राप्त करता है-

तुलसी दारु जातेन चन्दनेन कलौ नरः।
विलिप्य भक्तितो विष्णुं रमते सन्निधौ हरेः।। [१]

तुलसी के काष्ठ-चंदन की महिमा अनन्त है। जो श्राद्धकाल (पितृ-पक्ष) में पितरों के निमित्त तुलसी-काष्ठ का चंदन अर्पण करते हैं। उनके पितृ-कुल सौ वर्ष तक संतुष्ट रहते हैं-

यो ददाति पितृणान्तु तुलसी काष्ठ चन्दनम्।
तेषां स कुरुते तृप्तिम् श्राद्धेवै शत वार्षिकीम्।। [२]

तुलसी-काष्ठ से बनी कण्ठी तुलसी-दल एवं तुलसी चंदन की भाँति तुलसी मृत्तिका की महिमा विषयक पुराणों में उल्लिखित है। स्थानीय संत परम्परा में आज भी कई महात्मा तुलसी मृत्तिका का तिलक धारण करते देखे जा सकते हैं। मान्यता है कि तुलसी की जड़ में स्थापित मिट्टी (रज) का माहात्म्य करोड़ों तीर्थ के समान है जिस पुरूष के ललाट में तुलसी मृत्तिका निर्मित पुंड्र दिखाई देता है, पाप करने पर भी वह पाप उसके शरीर में प्रविष्ट नहीं हो पाता-

तुलसीमृत्तिका-पुण्ड्रं यः करोति दिने दिने।
तस्यावलोकनाथ पापं याति वर्षकृतं नृणाम्।। [३]

तुलसी की जड़ों में लगी मृत्तिका (रज) का माहात्म्य करोड़ तीर्थों के समान है। वैष्णवजनों को यह मिट्टी पवित्रता से यत्नपूर्वक धारण करनी चाहिए। जिस पुरूष के घर और जिसके अंगों में तुलसी मूल की मृत्तिका विद्यमान रहती हैं, उसे देव-स्वरूप जानना चाहिए-

---

१. *प्रहलाद संहिता, तुलसी महात्म्य*

२. *प्रहलाद संहिता, तुलसी महात्म्य*

३. *गरूण पुराण, काशी खण्ड कार्तिक माहात्म्य*

भूगतेस्तुलसी-मूलैर्मृत्तिकास्पर्शिता तु या।
तीर्थ-कोटि-समा ज्ञेया धार्य्या यत्नेन सा गृहे।।
यस्मिन् गृहे द्विजश्रेष्ठ! तुलसी-मूलमृत्तिका।
सर्व्वदा तिष्ठते देहे देवता न स मानुषः।।
तुलसी-मृत्तिकालिप्तो यदि प्राणान् परित्यजेत्।
यमेन नेक्षितु शक्तो मुक्तः पाप श्चतै रवि।।[१]

ऐतिहासिक एवं अन्य महत्वपूर्ण संदर्भ–

वैष्णवों द्वारा तुलसी–काष्ठ से बनी माला धारण करने की परंपरा कालांतर में उनकी प्रमुख पहचान बनी। आध्यात्म से जुड़ी इस पवित्र परंपरा ने विभिन्न कालक्रमों में संघर्षपूर्वक अपना अस्तित्व बनाये रखा। ब्रज की लोक एवं देवालयी परंपरा में प्रचलित कंठी–माला विषयक प्रसंग ब्रज संस्कृति में इसकी गहरी पैठ दर्शाने वाले है। श्रीनिम्बार्क संप्रदाय की आचार्य परंपरा में पैंतीसवें पीठाचार्य ***श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी*** के संदर्भ में नाभादास कृत भक्तमाल और इस पर प्रियादास की टीका से ज्ञात होता है कि एक बार आप अपने शिष्य–प्रशिष्य एवं संतों सहित चट्थावल नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ एक सुन्दर बाग और उसके समीप देवी का मठ था। जल आदि की सुविधा देख आपने वहाँ विश्राम करने का निश्चय किया। उस स्थल का राजा शाक्त उपासक था। कुछ देर पश्चात् जब इन्हें ज्ञात हुआ कि वहां मंदिर में बकरे की बलि दिये जाने की तैयारी चल रही है तो वे काफी व्यथित हुए। यह देख इन्होंने संत मंडली सहित भोजन नहीं किया। यह भागवतापराध देवी से सहन नहीं हुआ। कहा जाता है कि वे स्वयं आचार्य जी के समक्ष प्रकट हुई और वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर आपसे भोजन का निवेदन किया। इसके बाद वहाँ पशु बलि को निषेध कर सदैव के लिए बंद करवा दिया गया–

श्रीभट्ट चरन रज परस कै सकल सृष्टि जाको नई।
हरिव्यास तेज हरि भजन बल देवी को दीच्छा दई।।[२]

ब्रज भाषा साहित्य के प्रख्यात कवि आनन्दघन ने स्वकाव्य में इस घटना का अंकन कुछ इस प्रकार किया है–

१. स्कन्द पुराण–ब्रह्मा नारद संवाद
२. *नाभाजी कृत भक्तमाल छप्पय– ७७*

तिन हारद के हृद भये, हरिव्यास बड़ देव।
अति गंभीर आशय सरस, सबनि करी जिहिं सेव।।
महिमा विदित कहौं कहा, देवन जगर मँझार।
देवी कौं उपदेश दै मेट्यौ पशु संहार।।
हिंसा हतन करयौ भलै लयौ सुधरम जिवाय।
करूनानिधि कलिकाल में, या विधि कियौ सहाय।।[१]

निम्बार्क संप्रदाय की परंपरा में उक्त विषयक उल्लेख अन्य स्थलों पर भी मिलता है। वहीं इस संदर्भ में उक्त घटना के चित्रण की परंपरा भी यहाँ देखी जा सकती है। (*चित्र-१६, पृ.५३*) श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी चौतीसवें निम्बार्काचार्य श्रीभट्ट जी के शिष्य थे। संप्रदाय साहित्य से जहाँ यह ज्ञात होता है कि आपने प्रचुर मात्रा में कण्ठियां प्रदान की (शिष्य बनाये)—

तिनि शिष्यनि संख्या नहीं, मही महोदधि रूप।
अमित प्रताप पुनीत जस, सबै धर्म धुज भूप।।[२]

पूर्व के अध्यायों में उल्लिखित है कि स्थानीय परंपरा में गुरु द्वारा परीक्षणोपरान्त शिष्य को कण्ठी प्रदान करते समय सद् आचरण संबंधी विधानों से अवगत कराते हुए तुलसी-माला की प्रतिकृति के रूप में सामान्य काष्ठ-माला भी प्रदान किये जाने की भी परंपरा थी। जो सामान्यत: प्रथम बार कण्ठी धारण करने वाले नये वैष्णवों से संबंधित थी। हालांकि वर्तमान में यह परंपरा कम ही देखी जाती है तथापि यह ब्रज संस्कृति का अपना वैशिष्ट्य है।

इस महत्वपूर्ण प्रसंग से जुड़े हरिव्यास देवाचार्य जी को स्वयं अपने गुरु श्रीभट्ट जी से कण्ठी प्राप्त करने (दीक्षा लेने) में पर्याप्त श्रम करना पड़ा। संप्रदाय साहित्य से उद्घाटित होता है कि इनके गुरुदेव ने साधना तथा विरक्त भावना की कठिन परीक्षा लेने के उपरान्त इन्हें शिष्य बनाने की अनुमति प्रदान की थी। संप्रदाय के विवरणों से प्राप्त होता है कि जिस समय हरिव्यास देवजी ने श्रीभट्ट जी के पास पहुँचकर दीक्षा देने की प्रार्थना की, उस समय गुरुदेव ने इनसे प्रश्न किया कि हमारे अंक (गोद) में तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है? इस संदर्भ

---

१. *आनन्दघन कृत पदावली*
२. *आनंदघन कृत पदावली*

में व्यासजी के उत्तर से श्रीभट्ट जी संतुष्ट न हुए। तब गुरुदेव ने कहा कि अभी तुम दीक्षा के अधिकारी नहीं हो। अत: तुम बारह वर्ष तक गोवर्धन की परिक्रमा और भजन करो।'श्रीभट्ट जी की आज्ञा प्राप्त कर हरिव्यास देवजी ने बारह वर्ष पर्यन्त गिरि गोवर्धन की प्रदक्षिणा की, तदोपरांत उन्हें दीक्षा (कण्ठी) लेने के उद्देश्य से गुरुदेव के समक्ष पहुँचे। इस समय भी गुरुदेव ने पुन: वही प्रश्न किया और हरिव्यास जी ने फिर वही नकारात्मक उत्तर दिया। इस समय गुरुदेव ने उन्हें पुन: बारह वर्ष तक परिक्रमा की आज्ञा दी। इस बार श्री हरिव्यास देवजी जब लौटकर आये तो उन्हें श्री भट्टजी की गोद में राधाकृष्ण का युगल स्वरूप विराजमान दिखाई दिया। इस समय श्रीभट्ट जी ने इन्हें दीक्षा योग्य समझकर कण्ठी प्रदान की। गुरु-शिष्य परंपरा का उक्त विषयक चित्रांकन संप्रदाय के प्राचीन हस्तनिर्मित चित्रों में देखा जा सकता है।

ब्रज की वाचिक परंपरा में प्रचलित लोकोक्ति *'गोकुलनाथ बड़े महाराज, तिलक माल की राखी लाज'* जहाँ वल्लभकुल सम्प्रदाय में तिलक और कण्ठी-माला का महत्व प्रदर्शित करने वाले है। वहीं कण्ठी-माला को लेकर ब्रजवासी समाज में विद्यमान ये भाव उक्त संदर्भ में जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। विट्ठलनाथ जी के चौथे लालजी (पुत्र) होने पर भी ब्रजवासियों द्वारा उन्हें बड़े महाराज कहकर संबोधित करना, उनकी महानता तथा ब्रजवासियों का उनका प्रति स्नेह भाव प्रदर्शित करता है। सम्प्रदाय साहित्य से ज्ञात होता है कि जहाँगीर के शासनकाल में एक बार ब्रज में निवास करने वाले वैष्णवों के तिलक और कण्ठी-माला पर रोक लगा दी गई थी। उस समय शाही आदेश था कि जो व्यक्ति तिलक या कण्ठी धारण करेगा, उसे दंडित किया जायेगा। इस प्रकार की राजाज्ञा से बहुत से लोगों ने अनिच्छा पूर्वक तिलक लगाने बंद कर दिये तथा गले से कण्ठियां उतार ली। जिन्होंने ऐसा करना उचित न समझा वे ब्रज छोड़कर अन्यत्र चले गए। उस समय विषम परिस्थिति में गोकुलनाथ जी ने वैष्णव धर्म के सभी धर्म सम्प्रदायों के सम्मान और गौरव की रक्षा के लिए पर्याप्त संघर्ष किये। जिन लोगों की कंठियां खंडित होती उन्हें वे पुन: नई कण्ठी धारण करा देते। शाही सैनिक ब्रज के वैष्णवों की कण्ठी-माला तोड़ देते और तिलक बिगाड़ देते। उस

समय मुस्लिम अधिकारियों ने गोकुलनाथजी के समक्ष यह शर्त रखी थी कि या तो वे कण्ठी-माला का त्याग करे अथवा ब्रज को छोड़कर अन्यत्र चले जाये। ऐसे समय में गोकुलनाथजी महाराज ने कण्ठी-माला और तिलक त्यागने की अपेक्षा परम प्रिय ब्रजमंडल को त्यागने का निश्चय किया। कहा जाता है कि बादशाह ने यह कार्य चिदरूप [१] नामक एंक संयासी के कहने पर किया था। अंत में गोकुलनाथजी ने इस संबंध में शाही दरबार में जाने का निश्चय किया। उस समय जहांगीर कश्मीर में था, गुजराती कवि ***गोपालदास*** द्वारा रचित ***'माला-प्रसंग'*** (मालोद्धार) ग्रंथ से ज्ञात होता है कि गोकुलनाथ जी ने ७० वर्ष की आयु में कश्मीर की दुर्गम यात्रा तय की।

वे कश्मीर में जहांगीर के समक्ष उपस्थित हुए और कंठी तथा तिलक के संदर्भ में शास्त्रोक्त प्रमाण देने के साथ अकबर की धार्मिक सहिष्णुता का हवाला दिया। इन बातों से जहांगीर काफी प्रभावित हुआ और उसने अपनी आज्ञा वापिस ली। पुष्टि संप्रदायी उल्लेखों के अनुसार सम्राट जहांगीर का वह आदेश संवत १६७४ में जारी हुआ और इसे संवत १६७७ में उसे वापिस ले लिया। [१]

पुष्टि संप्रदाय में प्रचलित गोकुलनाथजी की जन्म बधाई वाले एक प्रसिद्ध पद में इस घटना की ओर संकेत किया गया है–

जयति विठ्ठल-सुवन, प्रगट बल्लभ बलि, प्रबल पनकरी, तिलक-माल राखी।
खण्ड पाखण्ड, दण्डी विमुख दूर करि, हर्‌यौ कलि काल, तुम निगम साखी।।

सम्प्रदाय में प्रचलित संवत् १७०० के लगभग रचित मालोद्धार ग्रंथ से इतर कई पृथक स्थलों पर भी इस घटना का विवरण कुछ इस प्रकार मिलता है–

मिटि गयौ मौन पौन साधना की सुधि भूली,
भूलो योग युगति विसार्‌यो तप बन कौ।
''सेख'' प्यारे मन कौ उजारो भयो प्रेम-नेम,
तिमिर अज्ञान गुन नास्यौ बालपन को।।
चरन कमल की मैं लोचननिलौच धरी,
रोचन है राच्यौ सोच मिट्‌यो धाम धन कौ।

---

१. पी.डी. मीतल - ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास।

सोक लेस नेक न कलेस हू को लेस नहीं,
सुमिरितैं गोकलेस मिटे कलेस मनकौ।। (शेख)

टेक की, टेक की, टेक की रे, गिरि टेक टरै तो टरै धुवतारो।
श्री गोकुलनाथ जु माला तजै, तौ शेष न शीस धरै भुव भारो।।
पौन थकै तो थकै ब्रज कौ पन, कौन करै महिते रजन्यारो।
श्री बल्लभ वंस बिहारी कहै, कवि जागत है जग में जस धारो।।

(विहारी)

सेस सुरेस दिनेस कही, सुनि ही सब गोकुल की रजधानी।
चिदरूप तें वे गरज्यो ब्रज में, द्विजराज करी सों तिहूँपुर जानी।
तो पै यह बात करी "कल्याण", महीपति आगे जु जाय बखानी।।
आज अजौं ब्रज मंडल माँझ, रहो मुख गोकुलनाथ के पानी।

(कल्याण कवि)

विट्ठल के नंद सुखकंद गोकुलेस तब, सुजस कौ तंबू जंबूदीप पर छायौ है।
चलत अदीठ चक्र चहुधां कनात सोई, कीरत के धर्म धीर थापि के दृढ़ायौ है।।
धरम के मोरचा पै सुमेर सों मेखें गाड़ि, प्रबल प्रताप डोरी खैचि के तनायौ है।
"गहर गोपाल" कहें तात रिनिवास किये, दुखयन दारिद्रन पहरिया नसायौ है।।

(गहर गोपाल)

अधम उद्धारन तुम नाथ वल्लभ।
भक्त पैज प्रतिपारन,
तपसी त्रास निवारन,
दुष्ट संहारन कारन,
तिलक माल उद्धारन।
माननी मान निवारन,
रसिक सिरोमनि रस संचारन,
कीरति उज्ज्वल जग विस्तारन,
वृन्दावन "गोकुलपति" नागर,
प्रगटे निज जन कारन।।

(वृन्दावनदास)

''प्राननाथ'' कहे बात सुनो सवै कान दै,
मति जानो ख्याल श्री गोकुलनाथजी की माला है।
वेदहू बखानी मरजाद हू बखानी जाहि,
डारे गुदी बीच माला अमृत रसाला है।।
बुलांए जहाँगीर ने जाय के जुआब दियो,
हिन्दू की पतिराखी श्री गोकुलनाथ प्रतिपाला है।।

(प्राननाथ)

शाह कही सो तैं न करी, करी सोइ जो वेद पुरानन भाखी।
माल तिलक्क जनेऊ के कारन, क्रूर को ऐंड़न पैंडन नाखी।।
श्रीपति कहें जहाँगीर के खान, अरु उमराव जिते सब साखी।
श्री विट्ठलनाथ जू के गोकुलनाथ जू, सो सब हिन्दुन की पति राखी।।

(श्रीपति)

ताताज्ञैक परः पराशयविदो वर्यः परानन्ददो।
माला येन सुरक्षिता निज महायत्नेन कण्ठे सतां।।
धर्मो येन विवर्धितः पूत पदाचार प्रचारैः सदा।
स गोकुल नायकः करुणया भूपाद्वशे सेविनाम्।।

(श्री हरिरायजी)

औरन स्वांग धरे सब पेट के, एक हुकूमत जींद रहाला।
तैं कुल जक्त न धर्म तज्यो, सिध-साधक भूलि गयो मतवाला।।
खेम चहूँ धनि धन्य कहै, प्रेम पुलक्क सौं भक्त रसाला।
श्री विट्ठलनाथ के गोकुलनाथ जू, तुमने पहरी जग में जसमाला।।

(खेम)

माला को अकार हू तो गयो थो संसार हूते,
राखी टेक करिकै प्रताप गिरधारी जू।
नेक के कहत तोरि डारी सब स्वामियन,
धीरज न धर्‌यो नेक डर भयो भारीजू।।

मंदिर आवास धर तजत न लग्यो मन,
लीला को विलास मान्यो गोकुलबिहारी जू।
अजहूँ जे मुक्त भये केते जुग बीत गए,
सगर के वंस हेत आप पाँव धारी जू।।

(गोकुल बिहारी)

१६वीं शताब्दी में महात्मा भगवत मुद्रित द्वारा रचित *रसिक अनन्यमाल* ग्रन्थ के अन्तर्गत ***स्वामी चतुर्भुजदास*** जी की परिचयी से ज्ञात से होता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य हरिव्यास देवाचार्य जी की भाँति चतुर्भजदासजी नामक एक राधावल्लभी संत ने भी शाक्तोपासकों की देवी को दीक्षा प्रदान कर वहाँ बलि परम्परा (जीव हिंसा) को बंद कराया–

दिक्षा दै पुनि शिक्षा कीनी। तिलक प्रसादी माला दीनी।।
जिव हिंसा अब तैं मत करियौ। भक्तनि सौं अति रति उर धरियौ।।[१]

गोस्वामी हितहरिवंश महाप्रभु के पुत्र वनचन्द्र जी के शिष्य चतुर्भुजदासजी के द्वारा स. १६८६ के लगभग रचित द्वादश यश उनकी महत्वपूर्ण कृति है जिसमें उन्होंने वैष्णवों के आचार–विचार एवं भजन विधान पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए ***तुलसी की कण्ठी माला*** का महत्व भी दर्शाया है। आप के सन्दर्भ में भगवत मुदित ने लिखा है कि चतुर्भुजदास जी श्रीहित हरिवंश द्वारा स्थापित रसिक अनन्य धर्म का सर्वत्र प्रचार करते रहते थे। उनके जीवन काल में घटित कई चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख रसिक अनन्यमाल में वर्णित है। इसी परिचई में अन्य प्रसंगों के साथ कण्ठी–माला के संदर्भ में भी एक विवरण मिलता है जिसके अनुसार एक बार वे साधु मण्डली के साथ भ्रमण करते हुए मार्ग से गुजर रहे थे। वन्य हरितिमा से आच्छादित रमणीय स्थल देख उन्होंने वहाँ कुछ देर विश्राम करना चाहा। वह स्थल शाक्तोपासना का क्षेत्र था। उस देवी के मंदिर में विद्यमान पंडे ने उन्हें बताया कि स्थानीय राजा इस देवी का परम भक्त है। और वह यहाँ आकर देवी को भैंसा तथा बकरे की बलि चढ़ाता है। इस प्रकार यह स्थल आपके ठहरने के लायक नहीं। यह सुनने के बाद भी चतुर्भुजदास जी ने उस स्थल पर डेरा डाले रखा। उक्त

---

१. भगवतमुदित कृत चतुर्भुजदास की परिचई

ग्रन्थ में वर्णित है कि चतुर्भुजदासजी के भजन बल से देवी प्रभावित हुई और उसने सात वर्ष की कन्या के माध्यम से अपने पण्डे द्वारा कहलवाया कि तू जाकर स्वामी जी से प्रार्थना कर कि वे मुझे दीक्षा प्रदान करें–

सात बरस की कन्या मुख ह्वै। शक्ति शिष्य भई स्वामी पद छ्वै।।
दिक्षा पंडा हू ने लई। क्षुद्र आस जन मन की गई।।
अब यह शक्ति वैष्णव भई। प्रथम नृपति कौं दिक्षा दई।।[१]

राधावल्लभ सम्प्रदायी भक्त चाचा *हित वृन्दावनदास* ने अपनी रचना *'रसिक अनन्य परचावली'* में स्वामीजी का विवरण कुछ इस प्रकार दिया है–

श्री हरिवंश प्रताप ते भक्ति विस्तरी चतुर्भुज।
गौड़ देस परवेस भूप की आज्ञा टारी।।
देवी कौं उपदेस भूत जों इन सब तारी।
द्वादश यश हरिधर्म कथन कियों सर्वोपरि।।
प्रभु दासन के दास सेव्य राधा मुरलीधर।
जुगल चरित हितचरित रमें रोपी धर्म अनन्य धुज।।[२]

प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका में भी चतुर्भुजदास जी के सन्दर्भ में कण्ठी–माला विषयक विवरण प्राप्त होते हैं–

गौड़ वाने देस भक्ति लेस हू न देख्यौ जहाँ।
मानुष कौं मारि इष्ट–देव कौं चढ़ायौ है।।
तहाँ जाय, देवी ताकौं मंत्र लैं सुनायौ कान।
लियौ उन्मनि गाँम सुपन सुनायौ है।।
स्वामी चतुर्भुज के वेग तुम दास हो।
नातौ होय नास सब गाँम–भजौ आयो है।।

---

१. *भगवतमुदित कृत चतुर्भुजदास की परिचई*
२. *रसिक अनन्य परचावली छन्द – १२१*

ऐसे सिष्य किए माला-कण्ठी पाय लिए।
पाम लिए मन डिए औ अन्नत सुख पायौ है।।[१]

ब्रज में प्रचलित 'कण्ठी-बन्ध चेला' वाक्य की सार्थकता को प्रमाणित करता एक महत्वपूर्ण विवरण राधावल्लभ सम्प्रदाय सम्बन्धी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ *'हितरूप चरित्र बेली'* से ज्ञात होता है। सम्वत् १८२०[२] में चाचाहित वृन्दावन दास द्वारा रचित इस अल्पज्ञात ग्रन्थ में सम्प्रदाय से जुड़े तत्कालीन महत्वपूर्ण प्रसंग के अन्तर्गत 'कण्ठी बन्ध चेला' (शिष्यों) सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत हुआ है। ग्रन्थ के अनुसार तत्कालीन समय में ब्रज के अधिपति सवाई जयसिंह एवं राधावल्लभ सम्प्रदायाचार्य गो॰ हित रूपलाल जी के मध्य परस्पर मतभेद होने पर परिस्थितिवश गोस्वामी जी को वृन्दावन त्यागना पड़ा-

लैंके जु कुटुम्ब संग इन्द्रप्रस्थ वास कियौ,
तहाँ हू न चैंन देहि नृप कौं लगी जकी।
कबहूँ सिखावै मैना कबहूँ ढुकावै सैना,
कबहूँ लगावै इत द्वारा ह्वै तकातकी।।[३]

उस दौरान एक समय जब उनके ब्रज में आगमन की सूचना जयसिंह के कर्मचारियों को हुई तो वे राजकीय आदेश की अवहेलना के पक्ष में उनके पास पहुँचे। ऐसे में गोस्वामी जी के कण्ठी-बंध सेवक (शिष्य) भी उनके समक्ष एकत्रित होने लगे। ग्रन्थानुसार गोस्वामीजी अपने शिष्यों को निरन्तर समझाते रहे कि कहीं स्थिति और अधिक न बिगड़े-

ये न वरजिवौ मानिहैं, गुरु धर्मी सम्बन्ध।
कौंन-कौंन समझाइये, सब मण्डल कण्ठी बन्ध।।[४]

तत्कालीन परिदृश्य के साक्षी ग्रन्थाकार चाचा हित वृन्दावनदास ने ग्रन्थ में इस स्थल पर महाराज श्री के शिष्यों का विवरण देते हुए *''कौंन-कौंन समझाइए सब मण्डल कण्ठी बन्ध''* पंक्ति प्रस्तुत कर तत्कालीन ब्रजवासी समाज में इस परम्परा की व्याप्ति की ओर संकेत किया है।

---

१. *प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका*
२. *अठारह सौ बीस बरस संवत गत जानिये जु,*
चैत्र सुदि पूरनिमा ग्रन्थ पूरन है भयौ।...छन्द ४५९
३. *हित रूप चरित्र बेली छन्द - २९०*
४. *हित रूप चरित्र बेली छन्द - ३५९ (चित्र-२४ पृ.५५)*

चैतन्य सम्प्रदाय में तुलसी की कण्ठी-माला का विशेष महत्त्व है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी महात्माओं में तुलसी-काष्ठ से बनीं कंठियों का वैविध्य देखते ही बनता है। कंठी-माला की परम्पराओं के प्रसंग यहाँ महाप्रभु के समय से ही उद्घाटित देखे जा सकते हैं। जब श्री मन्महाप्रभु सम्वत् १५७२ में नीलाचल से वृन्दावन यात्रा पर पधारे तब वे मार्ग में २ माह पर्यन्त श्री तपन मिश्र के यहाँ ठहरे। तपन मिश्र के पुत्र रघुनाथ भट्ट उस समय बालक थे। बचपन में ही इन्हें चैतन्य महाप्रभु के सानिध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कृष्णदास कविराज द्वारा रचित *''चैतन्य-चरितामृत''* ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि एक अवसर पर स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माला उतारकर रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के गले में डाल दी-

पुनरपि एक बार आसिह नीलाचले।
एत बलि कण्ठ माला दिल तांर गले।।[१]

उक्त ग्रन्थ में वर्णित है कि चैतन्य महाप्रभु को श्री जगन्नाथ जी की चौदह हाथ लम्बी तुलसी की माला एवं छुटा पान (विशेष प्रकार का पान) एक पुजारी ने दिये थे। वह माला एवं पान महाप्रभु जी ने रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी को प्रदान किये। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी ने इस प्रसादी को इष्टदेव का रूप जानकर अपने पास रख लिया और प्रभु की आज्ञा से इन्हें लेकर वृन्दावन आ गए-

चौद्दह हाथ जगन्नाथेर माला। छुटा पान बिड़ा महोत्सवे माञा छिला।।
से माला छुटा पान प्रभु तारि दिला। 'इष्टदेव' करिमाला धरिया राखिला।।
प्रभु ठाञि आज्ञा लञा आइला वृन्दावन। आश्रय करि आसिल रूप सनातन।।[२]

मान्यता है कि वृन्दावन के पुराना शहर अठखम्बा स्थित रघुनाथ भट्ट गोस्वामी पीठ में तुलसी की वह माला आज भी विद्यमान है, जहाँ परम्परानुसार इसकी सेवा-पूजा श्री विग्रह की भाँति ही की जाती है।

गौड़ीय संत परम्परा में ही तुलसी की कण्ठी से सम्बन्धित एक अनूठा विवरण बाबा अवधदास महाराज के चरित्र से ज्ञात होता है। गुरु-शिष्य परम्परा के

---

१. *कृष्णदास कविराज कृत चैतन्य चरितामृत त्रयोदश परिच्छेद छन्द - ११३*

२. *कृष्णदास कविराज कृत चैतन्य चरितामृत त्रयोदश परिच्छेद छन्द - १२२-१२४*

अन्तर्गत तुलसी की कण्ठी धारण कराने के उदाहरण तो सर्वत्र देखे जा सकते है; लेकिन बाबा अवध दास महाराज ने अपने भजन प्रताप से वानर जन्म में आए अपने शिष्य को पहिचान उसे *तुलसी की कण्ठी* प्रदान कर पुनः वैष्णव बना लिया।

डॉ. अवध विहारी कपूर द्वारा लिखित पुस्तक *ब्रज के भक्त* के अन्तर्गत श्री अवधदास जी महाराज के चरित्र से ज्ञात होता है कि ये वृन्दावन स्थित धोबी गली के समीप एक स्थल पर भगवद् भजन करते थे। सन् १८२६ ई. के लगभग बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले में जन्मे बाबा महाराज दस-बारह वर्ष की आयु में ही परमार्थ के पथ पर घर से बाहर निकल पड़े। तीर्थाटन के दौरान बिहार प्रान्त के मिथिलापुरी में उन्होंने माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के सन्त हरिकिंकर योगीन्द्रवर्य जी से दीक्षा प्राप्त की। श्री गुरुदेव के प्रयाण के पश्चात् आप ४० वर्ष की अवस्था में उनके आदेशानुसार वृन्दावन धाम आ गए। वे श्रीमद्भागवत् के श्री विग्रह के समान ही सेवा-पूजा करते।

एक बंगाली सज्जन बाबा से दीक्षा लेकर उनके आश्रम में रहने लगे। उनका यह शिष्य स्वभाव से चंचल था जिसके चलते उसका मन अधिक समय तक वहाँ नहीं लगा। एक बार उसने बाबा से बाहर जाकर भ्रमण करने की आज्ञा माँगी। बाबा ने उसे इस बात के लिए अनुमति नहीं दी। फिर भी वह एक दिन अपने बोरिया-बिस्तर बाँधकर जाने की तैयारी करने लगा। यह सब देख बाबा महाराज ने कहा "गुरु-आज्ञा की अवहेलना कर बन्दर की तरह इधर-उधर डोलने से कुछ न होगा?" लेकिन उस पर इन सब बातों का कोई प्रभाव न पड़ा और वह कुछ दिन घूम-फिरकर आने की बात कहकर आश्रम से निकल गया।

बहुत दिनों तक उसका कोई संवाद न मिलने से गुरुदेव को चिन्ता रहने लगी। एक दिन जब वे आश्रम के प्रांगण में टहलते हुए नाम जप कर रहे थे कि एक बन्दर के बच्चे ने आकर उनके चरण पकड़ लिए। बाबा महाराज तत्काल समझ गए कि यह उनका वही शिष्य है जो उनके द्वारा काफी समझाए जाने पर भी आश्रम से चला गया था। बाहर जाने पर किसी कारणवश उसकी मृत्यु हो गई और गुरु आज्ञा की अवहेलना के फलस्वरूप उसे वानर का जन्म मिला। भक्ति

के प्रभाव से उसे पूर्व जन्म में किए अपराध का भान था और वह अपनी इस भूल का प्रायश्चित करना चाहता था। उसकी यह दशा देख बाबा ने कहा- अच्छा किया तुम आ गए। अब पुनः कहीं न जाना। उसी समय उन्होंने उसका नाम रामदास रखते हुए गले में कण्ठी बाँध दी और आश्रम वासियों को उसका ध्यान रखने को कह दिया।

वानर आश्रम की छत और उसके आस-पास रहने लगा। प्रसाद के समय वह आँगन में आकर प्रसाद पा जाता। संध्या बेला में जब बाबा श्रीमद्भागवत कथा कहते तो खिड़की के पास आक़र बड़े शान्त भाव से कथा श्रवण करता। इस दौरान एक-दो दिन रामदास को न देख बाबा महाराज अपने शिष्यों से बोले- दो दिन से हमने रामदास को नहीं देखा ? तुम लोगों ने भी उनकी कोई खबर नहीं ली, उसी समय एक शिष्य ने छत पर देखा कि रामदास छत पर मृत पड़ा है। बाबा को यह सूचना मिली तो वे बोले रामदास परम वैष्णव था। उसका उसी रीति से विधिवत संस्कार होना चाहिए। गुरु आज्ञानुपालन में बड़ी धूम-धाम के साथ रामदास का विमान सजाकर हरिनाम संकीर्तन के मध्य यमुना तट पर लाकर यमुना जी को समर्पित किया गया। तदोपरान्त इस उपलक्ष्य में वैष्णवों का वृहद भण्डारा आयोजित हुआ। जनश्रुति में प्रचलित इस कथा के सन्दर्भ में बाबा अवधदासजी महाराज द्वारा एक वानर को कण्ठी धारण कराते हुए चित्र भी देखने को मिलता है।(*चित्र-१७ पृ.५३*)

वैष्णव सम्प्रदायों में तुलसी-कण्ठी माला का विशेष माहात्म्य और अनिवार्य परम्परा कालान्तर में इनकी प्रमुख पहिचान बनी। इतिहास साक्षी है कि इन वैष्णव भक्तों का अपना यह स्वरूप बचाए रखने के लिए आन्तरिक एवं बाह्य दोनों परिस्थितियों में पर्याप्त संघर्ष झेलने पड़े। मस्तक पर तिलक, गले में तुलसी की कण्ठी एवं माला-झोली धारण करने वाले भजनानन्दी वैष्णव सन्त आरम्भ से ही शान्ति एवं सादगीपूर्ण जीवन यापन के लिए जाने जाते रहें हैं। हिंसा एवं कुटता से परे इन वैष्णवों को मध्यकाल में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। शाहजहाँ के काल में लगे एक कुम्भ के दौरान हुई एक बड़ी हिंसक

घटना की जानकारी तत्कालीन समय में लिखे गए एक अल्पज्ञात फारसी ग्रन्थ से ज्ञात होती है। मुबाद शाह द्वारा दाराशिकोह के लिए लिखे गए ग्रन्थ ***दबिस्तां-ए-मजाहब*** से ज्ञात होता है कि १०५० हिजरी (१६४० ई.) में हिन्दुओं के तीर्थ स्थान हरिद्वार में मुंडियों (वैष्णवों) और संयासियों (शैवों) के बीच बड़ी भारी लड़ाई हुई। जिसमें संयासी जीते और उन्होंने मुंडियों का बड़ी तादाद में सफाया कर दिया। ऐसे में जान बचाने के लिए बहुत से मुंडियों को तो अपनी तुलसी-माला तक छोड़नी पड़ी।[१]

कंठी तैयार करने की विधि एवं प्रयुक्त औजार -

कभी साधु-सन्तों और वैष्णव भक्तों द्वारा निजी उपयोगार्थ तैयार की जाने वाली तुलसी-कंठी माला की परम्परा ब्रजमण्डल में आज तक लघु-उद्योग के रूप में परिलक्षित होती है, जिसमें कार्य करने वाले पृथक-पृथक समूह अपना-अपना कार्य करते हुए कंठी माला तैयार करने में अपनी सहभागिता प्रदान करते हैं। तुलसी की कंठी तैयार करने में संलग्न इन समूहों को मोटे तौर पर चार भागों में विभक्त किया जा सकता है-

१. खेती करके तुलसी-काष्ठ का उत्पादन करने वाला वर्ग।

२. तुलसी काष्ठ की कटाई-छिलाई एवं खराद द्वारा दाने तैयार करने वाला वर्ग।

३. विभिन्न आकार-प्रकार के तैयार दानों की पुवाई में संलग्न वर्ग।

४. विशेषज्ञों का वर्ग जिनके द्वारा राधाकृष्ण नामाक्षर अथवा श्रीविग्रहों की आकृति काष्ठ चौकियों पर उकेरी जाती हैं।

हालाँकि इस उद्योग से जुड़ा उपरोक्त प्रत्येक वर्ग अपनी-अपनी दक्षता के अनुसार स्वकार्य में संलग्न रहता है तथापि आवश्यकता पड़ने पर ये परस्पर सहयोग करते हुए एक दूसरे के कार्य में सहयोग करते हैं। तुलसी की कंठियों के लिए दाना तैयार करने हेतु ब्रजमण्डल के ***जैंत, राल, वृन्दावन, चौमा, माँट, कामवन, राधाकुण्ड, गोवर्धन*** एवं ***टैंटीगॉव*** सहित कई स्थानों पर तुलसी की खेती की जाती है। देहात में इसकी खेती करने वाले लोग कंठी तैयार करने वाले विभिन्न केन्द्रों

---

१. *दबिस्ता-ए-मजाहब, पृष्ठ-२६७, आलोचना ३१वाँ अंक श्री पुरुषोत्तम अग्रवाल के लेख से*

पर इसके काष्ठ की आपूर्ति करते हैं। ब्रज मण्डल में कण्ठियाँ तैयार करने वाले विभिन्न केन्द्रों पर इसके बनाने का तरीका प्राय: एक जैसा ही देखने को मिलता है लेकिन में वर्तमान में कहीं-कहीं कारीगरों द्वारा अपने नये प्रयोगों से विद्युतचलित मोटर द्वारा भी कंठियां तैयार की जाती है। *(चित्र-७, ८ पृ.५१)*

खेतिहर लोगों द्वारा तुलसी-काष्ठ के बोझ (बंडल) लाए जाने पर सर्वप्रथम उसकी छंटाई-बिनाई का कार्य किया जाता है, जिसमें उसके पतले तथा मोटे तनों को अलग-अलग करके उनकी गड्डियाँ तैयार होती हैं।[१] तुलसी काष्ठ की टहनियों की छँटाई में लगा वर्ग कुशलता से उसके पृथक-पृथक हिस्सों के बंडल तैयार करता है। इस कार्य में लगे लोग प्राय: कम मिलने वाली अति महत्वपूर्ण लकड़ियों का चयन इन बंडलों से सतर्कता पूर्वक करते हैं। पतली लकड़ियों से जहाँ सीधे दुपेचा (पतली कण्ठियाँ जो प्राय: वल्लभकुल सम्प्रदाय में प्रयुक्त होती हैं) कण्ठियाँ तैयार की जाती हैं वहीं शेष (मोटी लकड़ियों) को पानी से भरे पात्र में डालकर उबाला जाता है। इस परम्परा से जुड़े विशेषज्ञों का मानना है कि उबालने से जहाँ इस काष्ठ में नरमाई (लोच) आती है वहीं इस प्रक्रिया से खराद पर दाना बनाते समय इसके चटकने या फटने का भय भी कम रहता है।

तुलसी की लकड़ी से दाना बनाने के लिए लकड़ी को उबालकर हल्का सुखा लेने के उपरान्त उसकी टिकलियाँ *(चित्र-२, पृ.५०)* तैयार की जाती हैं। तदोपरान्त इन टिकलियों को खराद पर लगाकर कारीगर दाने तैयार करते हैं। जहाँ निश्चित आकार-प्रकार के दाने खराद पर तैयार किये जाते हैं वहीं पतली टहनियों से बनने वाली कण्ठियाँ सीधे लम्बी सुई के प्रयोग द्वारा बनाई जाती हैं। इसी प्रकार पर्याप्त मोटाई का तुलसी-काष्ठ हीरा जो धागे में पिरोकर पहना जाता है, भी अलग ही हाथ से तैयार किया जाता है। गले में तुलसी-काष्ठ का हीरा धारण करने वाले संत एवं वैष्णवजन इसे अपने लिए प्राय: स्वयं ही तैयार करते हैं। *(चित्र-६, पृ.५०)*

---

१. ब्रज में तुलसी के काष्ठ से तैयार की जाने वाली कण्ठियों का वैविध्य इसकी अपनी विशेषता है। यहाँ वैष्णव भक्तों की माँग के अनुसार शालिग्राम माला, काष्ठ-हीरा, नामाक्षर से युक्त चौकी वाली माला एवं जाप हेतु सर्पाकार माला आदि तैयार की जाती हैं। जिसमें शालिग्राम माला के लिए पौधे के टहनी वाले हिस्से का चयन, काष्ठ हीरा के लिए मोटा तना तथा नामाक्षर चौकियों लिए बिना गाँठ वाले मोटे तने का चयन आवश्यक होता है।

खराद द्वारा प्रचुर मात्रा में दाने तैयार किए जाने के बाद इन्हें फैलाकर कम धूप में अथवा धूप निकलने के दौरान किसी वृक्ष की छाँह में सुखाया जाता है। तदोपरान्त इन्हें सेलखड़ी से घिसकर चिकना बनाया जाता है। खराद पर दाना बनाने के दौरान जहाँ कुछ दाने बेदाग (फ्रैश) तैयार होते हैं वहीं इनके साथ ही दागी (चित्तीदार) दाने भी निकलते हैं। ऐसे में कारीगर दागी दानों को पुनः एकत्रित कर उन्हें घिस-घिसकर बेदाग बनाते हैं ताकि इन दानों (मनकों) से तैयार होने वाली माला में एकरूपता बनी रहे इस प्रकार तैयार एक जैसे चिकने दाने पुवाई के कार्य हेतु तैयार होते हैं। जिनसे १५, २४, ३० एवं ४५ इंच तक की मालाएँ तैयार की जाती हैं।

प्रयुक्त औजार-

कण्ठी तैयार करने में प्रयुक्त औजार स्थानीय कारीगरों के जेहन की अपनी उपज है। कार्य की आवश्यकता एवं विस्तार के अनुरूप इन्होंने उक्त सन्दर्भ में इस कार्य को एक नई दिशा प्रदान की है। तुलसी की कण्ठी-माला तैयार करते समय इन लोगों द्वारा ***कुंदा, पटास, बटाली, कमानी, सुआ, सरकोंडा, हाँसियाँ, सुई*** एवं ***साँचा*** आदि औजारों का प्रयोग कर खराद पर दाने तैयार करते हैं। जिसे हम निम्नानुसार समझ सकते हैं-

कुंदा-

कण्ठी के लिए खराद पर दाना तैयार करते समय 'कुंदा' काप्रयोग किया जाता है। जिसमें एक तरफ पीतल का कुछ चौड़ाई लिए हुए गोल छल्ला लगा रहता है। कुंदे में लगे इस छल्ले की स्थिति कुछ इस प्रकार होती है कि यह एक ओर से लकड़ी में कसकर लगा हुआ तथा दूसरी ओर इसका कुछ हिस्सा बाहर की तरफ निकला रहता है। बाहर की ओर निकले हिस्से में कण्ठी के लिए दाने बनाने वाली टिकली को ठोंकते हुए संयोजित कर लिया जाता है। इस प्रकार यह टिकली एक तरफ से कुंदे में तथा दूसरी तरफ लोहे के नुकीले सुए में फँसी रहती है। कुंदे के ऊपर कमानी का प्रयोग करते हुए गोल दाने तैयार किए जाते हैं।*(चित्र-२५, पृ.५६)*

पटास-

यह लोहे से निर्मित, नीचे की तरफ से धारदार औजार होता है जिसकी सहायता से तुलसी-काष्ठ की टिकलियाँ तैयार की जाती हैं। पटास की सहायता से कारीगर लकड़ी को छीलते हुए इसे कण्ठी-माला के उपयोग हेतु तैयार करते हैं।

बटाली-

खराद पर दाना तैयार करने के दौरान बटाली महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। इसकी सहायता से चिकने, गोल एवं साफ तुलसी के दाने तैयार होते किये जाते हैं। लोहे की ६-७ इंच की पतली छड़ को आगे से पीटकर उसकी अल्प चौड़ाई बनाते हुए, चौड़ाई लिए हुए इस अग्रभाग को धारदार करके बटाली तैयार कराई जाती है। तुलसी की कण्ठी में प्रयुक्त होने वाले दानों को बटाली की सहायता से ही गोलाकार स्वरूप दिया जाता है।*(चित्र-२५, पृ.५६)* अत्यधिक प्रयोग में आने के कारण कारीगर समय-समय पर इसकी खुटाई (धार सही कराने की प्रक्रिया) कराते हुए इसे उपयोग हेतु सही कराते रहते हैं।

कमानी-

लकड़ी की लगभग डेढ़-दो हाथ लम्बी पतली गोलाकार रॉल के दोनों सिरों में छिद्र करने के उपरान्त पतली रस्सी (डोरी) पिरोकर खराद चलाने हेतु कमानी तैयार की जाती है।*(चित्र-२५, पृ.५६)* कण्ठी-माला उद्योग में लगे कारीगर खराद चलाने के लिए कमानी का प्रयोग लगभग उसी भाँति करते हैं जैसे पूर्व में काठ-मिस्त्री लकड़ी में छिद्र हेतु हत्थी वर्मी का प्रयोग करते थे। हाँलाकि उनके कार्य क्षेत्र में अब इस औजार की जगह ड्रिल मशीनों ने ले ली है। फिर भी कभी-कभी बिजली आदि की समस्या होने पर वे लोग इसका प्रयोग करते देखे जा सकते है इस औजार में भी इसी प्रकार की कमानी का प्रयोग कुछ भिन्न प्रकार से किया जाता है।

सुआ-

खराद संचालन के दौरान आम प्रचलित सुए की भाँति यह नुकीला औजार खराद में ही एक तरफ लगा रहता है कण्ठी-माला तैयार करने के दौरान इसका

उपयोग मुख्यत: दानों (मनकों) में छिद्र करने हेतु किया जाता है। खराद पर मध्य भाग में लगी टिकली एक तरफ सुआ तथा दूसरी तरफ से कुंदा के मध्य फँसी रहती है। *(चित्र-२५, पृ.५६)*

सरकोंडा-

कण्ठी हेतु दाने तैयार करने वाली खराद पर ऊपर की ओर दो हिस्से समकोंणनुमा लगे रहते है। जिनमें एक स्थिर तथा दूसरा सरकने वाला होता है। टिकली (तुलसी के दाने बनाने हेतु छिली हुई तैयार लकड़ी) की लम्बाई के अनुपात में कारीगर इसे सरकाते हुए अन्य पाये तक स्पर्श करा देता है तथा कमानी एवं बटाली के प्रयोग से दाने तैयार करता जाता है। दानों के तैयार होने पर टिकली क्रमश: छोटी होती जाती है ऐसी स्थिति में कारीगर इस सरकोंडे को सरकाते हुए खराद पर व्यवस्थित करते रहते हैं। *(चित्र-२५, पृ.५६)*

हाँसिया-

हाँलाकि खराद पर कार्य करने के दौरान इसका प्रयोग नही होता तथापि तुलसी की पतली लकड़ियों से दुपेचा (पतले दानों की कण्ठी) तैयार करते समय इसका प्रयोग लकड़ी छीलने एवं साफ करने हेतु किया जाता है। पृथक-पृथक कारीगरों के पास प्राय: अलग-अलग आकार-प्रकार के हाँसिये पाये जाते हैं।

सुई-

आम तौर पर घरेलू उपयोग में आने वाली सुई के सन्दर्भ में परिचय की आवश्यकता नहीं कंठी-माला उद्योग के अन्तर्गत माला पुवाई सम्बन्धी कार्य करने वाले लोग मजबूत एवं थोड़ी मोटी सुई का उपयोग करते हैं।

साँचा-

कण्ठी माला उद्योग में कारीगर दाने का आकार निर्धारण करने हेतु खराद में साँचे का उपयोग करते है जो सरकोंडे से पृथक स्थिर पल्ले में सुआ के समीप ही व्यवस्थित किया जाता है इसकी सहायता से कारीगर बटाली का प्रयोग करते हुए कण्ठी हेतु दाने तैयार करते जाते हैं। *(चित्र-२५, पृ.५६)*

साक्षात्कार

ब्रज क्षेत्र में कण्ठी-माला तैयार करने की परम्परा मुख्यतः साधु-समाज एवं देवालयी संस्कारों में रची-पगी रही है। अपने आध्यात्मिक महत्त्व एवं बढ़ती माँग के चलते कालांतर में यह प्रक्रिया रोजगार से जुड़ी और आज यह एक लघु उद्योग के रूप में स्थापित देखी जा सकती है।विगत लगभग १००-१२५ वर्षों से कण्ठी-माला सम्बन्धी पारम्परिक उद्योग से जुड़े वृन्दावन निवासी श्री मुरारी लाल जी दीक्षित को यह परम्परा विरासत में मिली है। उन्होंने इस पवित्र कार्य को पूर्णरूपेण रोजगार की दृष्टि से न देखते हुए इसे भगवत सेवा का ही एक अंग मानकर इस कार्य को अपने नूतन प्रयोगों से एक नई दिशा प्रदान की है। स्थानीय कण्ठी-माला परम्परा के सन्दर्भ में इसके महत्त्व का प्रतिपादन कराता श्री दीक्षित जी का साक्षात्कार-

प्रश्न- **दीक्षित जी आप हमें कण्ठी-माला हेतु कच्चे माल की आपूर्ति एवं इसके निर्यात के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करें।**

उत्तर- पूर्व में जब साधु-संत एवं वैष्णव साधक अपने लिए कण्ठी तैयार करते तो उनके लिए तुलसी-काष्ठ का संग्रह कोई मुश्किल कार्य न था। अपने आश्रम, देवस्थल या गुरु स्थलों में तुलसी के पौधे की आयु पूर्ण होने पर जब नई पौधें लगाई जाती हैं तो पुराने पवित्र काष्ठ को संभाल कर रख लिया जाता था। जिसका प्रयोग करके वे लोग अपने लिए कण्ठियाँ तैयार करते। लेकिन अब परिस्थितियाँ बदली है। देवस्थलों मे कच्चे स्थान की कमी और तुलसी-कण्ठियों की बढ़ती माँग ने इस परम्परा को नई दिशा प्रदान की है। जिसके चलते कोई भी वैष्णव साधक अपनी पसन्द के अनुसार अच्छी से अच्छी कण्ठी का चयन कर सकता है। श्री दीक्षित ने कहा की वर्तमान में कण्ठी-माला उद्योग ब्रज के विभिन्न स्थलों पर निर्धारित व्यवस्था के अनुसार संचालित है जिसके अन्तर्गत कारीगरों के अलग-अलग समूह चरणबद्ध तरीके से कण्ठी-माला विषयक कार्य करते हुए आकर्षक कण्ठियाँ तैयार करते है। उन्होंने कहा कण्ठी-माला के लिए पवित्र तुलसी-काष्ठ की आपूर्ति तुलसी की खेती करने वाले किसानों से होती है। ब्रज मण्डल के जैंत, राल, कामवन, एवं यमुनापार सहित समीपवर्ती क्षेत्रों मे तुलसी की खेती करने वाले लोग कण्ठी-माला तैयार करने वाले केन्द्रों पर इसकी आपूर्ति करते हैं। लकड़ी आने के बाद कारीगर इसके बण्डलों से छँटाई-बिनाई का कार्य करते हुए टिकली बनाने हेतु इसके पतले तथा मोटे तनों

का चयन करते हुए ज्यादा पतली लकड़ी को अलग रखते जाते हैं। उल्लेखनीय है कि तुलसी की लकड़ी का चयन करते समय कारीगर उसके आकार-प्रकार एवं कण्ठी-माला उद्योग में इसकी उपयोगिता के हिसाब से विविध प्रकार की लकड़ियों का चयन सावधानी पूर्वक करते हैं। चयनित किये गये इन पृथक-पृथक बण्डलों से तरह-तरह की कंठी एवं मालाएं तैयार की जाती हैं। जिन्हें फुटकर दुकानदार, मंदिरों के आस-पास फेरी लगाकर बेचने वाले, बाहर से आने वाले पर्यटक, श्रीमद्भागवत् कथावचकों के साथ बाहर जाकर दुकान लगाने वाले एवं विदेशी भक्त आवश्यकतानुसार खरीदते रहते हैं।

प्रभुपाद के उपदेशों से प्रभावित विदेशी भक्तों की श्रद्धा के कारण ब्रज क्षेत्र की इस परम्परागत तुलसी-कण्ठी की पहचान आज विदशों तक जा पहुँची है। जिसके चलते विदेशी लोग तुलसी की कण्ठियों की खरीददारी करते देखे जा सकते हैं।

प्रश्न - दीक्षित जी तुलसी की कण्ठी एवं मालाएं आज विविधता के साथ बाजार में देखी जा सकती हैं। क्या कण्ठी-मालाओं का यह वैविध्य मात्र आकर्षण की दृष्टि से देखने को मिलता है या इसके पीछे कोई अन्य महत्त्वपूर्ण कारण भी हैं, कृपया समझाएं?

उत्तर- देखिए, सेवा प्रधानता ब्रज संस्कृति के मूल में विद्यमान है इसका यह गुण विशेष ही ब्रज के सांस्कृतिक महत्व को प्रकट करने वाला है। यहाँ फूल-बंगला, पुष्प-कली श्रृंगार, नौका-विहार, झूलनोत्सव एवं साँझी जैसी परम्पराओं की भाँति तुलसी-कंठी माला परम्परा भी आध्यत्म से जुड़ी है। जिसमें कार्य करने वाले कारीगर पवित्रता एवं शुद्धता का पूरा ध्यान रखते है। ऐसे में मात्र आकर्षण की दृष्टि से विविध डिजाइनों में अच्छी-अच्छी कण्ठियाँ बनाने की बात पूरी तरह से गले नहीं उतरती। उन्होंने कहा हालांकि मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि आधुनिकता की दौड़ में आज विभिन्न प्रकार की कंठियाँ बाजार में हैं लेकिन इसका यह मतलब कदापि नहीं कि भौतिकता की चकाचौंध में इस परम्परा का मूल भाव बिल्कुल हट गया हो। यहाँ कण्ठी-माला उद्योग के अन्तर्गत आज भी निम्बार्क, गौड़ीय, राधाबल्लभी, हरिदासी, वल्लभ, रामानन्दी एवं अन्य सम्प्रदायों

में प्रचलित मानक के अनुरूप उसी आकार-प्रकार की कण्ठियाँ तैयार की जाती हैं। श्रीदीक्षित ने बताया कण्ठी-माला उद्योग के अन्तर्गत कण्ठ (गले) को स्पर्श करती मालाओं में इकलड़ी, दुलड़ी, पंचलड़ी, दुपेचा एवं नामाक्षर अंकित चौकी युक्त माला सहित भजन हेतु प्रयुक्त अन्य प्रकार की मालाएं वैष्णव साधकों की माँग के अनुरूप तैयार की जाती है वहीं कुछ विशेष प्रकार की मालाएं विभिन्न सम्प्रदायों से जुड़े महात्मा एवं वैष्णवजन भी अपने लिए तैयार करते देखे जा सकते हैं। इस परम्परा से अपरिचित एक सामान्य पर्यटक भले ही कण्ठी-मालाओं के इस वैविध्य को अलग-अलग डिजाइनों की तरह समझे लेकिन तह में जाने पर इस परम्परा की गहराई समझी जा सकती है।

ब्रज संस्कृति के प्रचार-प्रसार में श्रीमद्भागवत कथा के स्थानीय कथा-व्यासों द्वारा राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यहाँ की विविध परम्पराओं का व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया है। उल्लेखनीय है कि इन विद्वान वक्ताओं के देश-विदेश में होने वाले आयोजनों के अन्तर्गत ब्रज संस्कृति की प्रचारक, एक प्रतिनिधि इकाई भी इनके साथ ही चलती है। जिसमें इनके साथ रहने वाले ये लोग तुलसी की कण्ठी-माला, गोपीचंदन, ब्रज रज के पेड़े (मिट्टी के गोले) श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं के चित्र, ब्रज के लोकप्रिय भजन एवं संत-महानुभावों के चरित्र संग्रह सम्बन्धी पुस्तकें तथा कृष्ण कथा की सी.डी., डी.वी.डी. आदि सामग्री आयोजन स्थल के समीप ही सजाकर दुकान (स्टॉल) लगाते हैं। आजीविका एवं ब्रज संस्कृति के प्रसार से जुड़ी, सामंजस्य की इस अनूठी पहल ने ब्रज संस्कृति के प्रसार को एक नई चेतना प्रदान की है। वृन्दावन निवासी श्री मदनलाल शर्मा विगत लगभग १५ वर्षों से देश-विदेश में होने वाले ऐसे आयोजनों में ख्यातिलब्ध भागवत् प्रवक्ताओं के साथ जुड़े रहे हैं। ब्रज क्षेत्र से बाहर तुलसी-कण्ठी माला के महत्त्व एवं उपयोगिता विषयक विभिन्न पक्षों को रेखांकित करता श्री शर्मा जी का साक्षात्कार-

प्रश्न - शर्मा जी ब्रज क्षेत्र में कण्ठियों की उपयोगिता प्राय: विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित मान्यताओं के अनुसार देखी जा सकती है जबकि संभवत: बाहर इसका यह स्वरूप दर्शित नहीं होता होगा; ऐसे सुदूर क्षेत्रों में कण्ठी-माला की माँग एवं इसके महत्त्व के संदर्भ में हमें अवगत कराने की कृपा करें?

उत्तर- देखिए ऐसा कुछ भी नहीं कि ब्रज और इसके आस-पास रहने वाले लोग ही इसका महत्त्व समझें और अनुकरण करें। बल्कि ब्रज से फैली सांस्कृतिक संचेतना ने आज पूरे भारत को ही नहीं अपितु विदेशों को भी प्रभावित किया है। श्रीकृष्ण की लीलास्थली के आकर्षण में बँधे देशी-विदेशी लोगों द्वारा यहाँ निरन्तर आवागमन, यहाँ के देवालयों एवं गुरु स्थानों में दीक्षा (मंत्र एवं कण्ठी) लेने जैसी परम्पराओं के चलते सुदूर क्षेत्रों का एक बड़ा वर्ग ब्रज-संस्कृति से जुड़ा है। जिसके चलते ये लोग अपनी-अपनी मान्यतानुसार कण्ठी-मालाओं का चयन करते हुए खरीददारी करते हैं। श्रीशर्मा ने कहा इस संदर्भ में प्राय: दोनों पक्ष देखे जा सकते हैं। जहाँ कुछ लोगों के लिए तुलसी की कण्ठी एक पवित्र वस्तु की तरह है वही कुछ विशेष मान्यताओं एवं मानक के अनुसार इसका प्रयोग करते हैं। उन्होंने कहा तुलसी-कण्ठी उद्योग ने अपने नए प्रयोगों से इस परम्परा को नव्य एवं भव्य स्वरूप प्रदान किया है। जिससे आज नई-नई आकर्षक डिजाइनों में कण्ठी-मालाऐं देखी जा सकती हैं। कंठी-मालाओं में रुचि रखने वाले नये युवा प्राय: इन्हीं मालाओं का चयन करते देखे जा सकते हैं।

एक प्रसंग के अन्तर्गत श्रीशर्मा ने कहा, देखिए, ब्रज क्षेत्र तो कण्ठी-माला परम्परा से जुड़ा मूल केन्द्र है। तुलसी के प्रति पवित्र भाव ने यहाँ इसे आध्यात्मिक जगत में उच्च स्थान प्रदान किया है। स्थानीय जन-मन में तुलसी के पौधे सहित इसके पवित्र काष्ठ से तैयार होने वाली कण्ठी-मालाओं के प्रति श्रद्धा-भाव देखते ही बनता है। यहाँ दुकान से माला लेते समय विक्रेता एवं खरीददार दोनों ही इसे शुद्ध हाथों से इसे स्पर्श करते हैं। तदोपरान्त कण्ठी धारण करने वाले वैष्णव भक्त इसे स्वेष्ट को अर्पित कर धूप-दीप दिखाकर दीक्षा-मंत्र का स्मरण करते हुए इसे कण्ठ में धारण करते हैं। उन्होंने बताया कण्ठी धारण करना देखने और सुनने में भले ही सामान्य प्रक्रिया दर्शित है लेकिन ब्रज क्षेत्र में इसे मनुष्य के आचरण से जोड़कर देखा गया है। यहाँ कण्ठी धारण करने का अर्थ निष्ठा पूर्वक गुरु-आदेशों का पालन करने से है जो सीधे तौर पर प्राणी के सदाचरण से जोड़ा गया है। इसलिए यहाँ देवालयों में आयोजित होने वाले उत्सव-मनोरथ एवं भण्डारों आदि में सहयोग के लिए भी प्राय: ऐसे वैष्णव लोगों का ही चयन किया जाता है। वार्ता

के दौरान श्री शर्मा विनोद पूर्वक बोले *तुम इतेक दिनान तै कण्ठीन के चक्कर में डोल रऐ औ, तुमनै बुजुर्गन के म्हौं ते जे बात तौ सुनी ई होगी कै- 'जाके गले में कण्ठी नांय बाके हाथ कौ पानी ऊँ नांय' जाकौ सीधौ अर्थ यहाँ के जनमानस में तुलसी की कण्ठी के महत्त्व कूँ दरसावै है।*

प्रश्न : शर्मा जी सुदूर क्षेत्रों में कथा-आयोजन स्थल पर दुकान लगाते समय आप ब्रज में आध्यात्मिक महत्त्व से जुड़ी कई वस्तुएं बिक्री हेतु साथ ले जाते होंगे; ब्रज संस्कृति से जुड़ी इस विविध सामग्री के सन्दर्भ में वहाँ सर्वाधिक माँग किस वस्तु की देखने को मिलती है?

उत्तर- कथा आयोजनों में बिक्री हेतु सामान ले जाते समय हम वहाँ के ग्राहक की माँग का विशेष ध्यान रखते हैं। भारत वर्ष के विभिन्न स्थलों पर हुई कथाओं में दुकान लगाने के बाद हमें इस बात का खूब अनुभव है कि किस प्रान्त में ब्रज की किस वस्तु की अधिक माँग है। कथा-आयोजन के स्थल की जानकारी होते ही हम वहाँ की डिमाण्ड के हिसाब से यहाँ थोक विक्रेताओं से माल खरीदकर यात्रा की तैयारी शुरू करते हैं। श्री शर्मा ने बताया भारतवर्षीय विविध प्रान्तों में ब्रज के अलग-अलग सम्प्रदायों का प्रभाव देखा जा सकता है। कहीं किसी सम्प्रदाय का जोर अधिक है तो कहीं किसी और का, ऐसे में हम प्रान्त में भी उसके नगर के हिसाब से उसी सामग्री को बहुतायत में ले जाते हैं, जो अधिक से अधिक खप सके। उन्होंने बताया अगर गुजरात के किसी नगर का कोई कार्यक्रम आता है तो हम अपने अनुभव के हिसाब से वल्लभकुल सम्प्रदाय में प्रचलित पतली कण्ठी और गुजरात में भी कार्यक्रम अगर अहमदाबाद का आता है तो हम अन्य सामग्री के साथ राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित चित्रपट और कण्ठी-मालाएं भी लेते जाते हैं। इसी प्रकार हम बंगाल, म.प्र., राजस्थान, बिहार एवं अन्य प्रान्तों के जनमानस की माँग के हिसाब से सामग्री का चयन करते हैं जिससे हमारा अधिकाधिक माल खप सके। श्री शर्मा ने बताया हमारे द्वारा ले जाए जाने वाले सभी आइटम अन्य प्रान्त के लोगों के लिए आकर्षक ही होते हैं। चूँकि कार्यक्रम आध्यात्मिक होता है तो वहाँ माँग भी आध्यात्म से जुड़ी वस्तुओं की होना स्वाभाविक है। ऐसे में हम कण्ठी-मालाओं के साथ भगवान की विविध लीलाओं

के चित्र, ब्रज रज के पेड़ा (मिट्टी के गोला), कण्ठी-मालाएं, भजन संग्रह की पुस्तकें, श्री विग्रह की पोशाक एवं आभूषण जैसी अन्य पारम्परिक पूजनोपयोगी सामग्री भी बिक्री हेतु ले जाते हैं। उन्होंने बताया कि बाहरी प्रान्तों में ऐसे सामान की अनुपलब्धता के चलते हमारी सामग्री की काफी माँग होती है। आयोजन स्थलों पर महिला एवं पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड कथा श्रवण करने के उपरान्त हमसे एसी सामग्रियों की खरीददारी करते हैं। वे बोले कभी-कभी तो स्थिति ऐसी भी हो जाती है कि बीच आयोजन में ही हमारे द्वारा ले जाया गया पूरा सामान खप जाता है और हमें तत्काल ट्रांसपोर्ट या किसी व्यक्ति विशेष को यहाँ भेजकर माल माँग मंगाना पड़ता है। श्री शर्मा ने बताया हमारे द्वारा यहाँ से ले जाने वाली सभी सामग्री ग्राहक की माँग के अनुसार होती है जिसमें अलग-अलग श्रद्धालु अपनी-अपनी इच्छानुसार सामान लेते हैं। ऐसे में किसी एक विशेष वस्तु की ओर इंगित नहीं किया जा सकता कि इसकी माँग सर्वाधिक है।

कण्ठी-माला तैयार करने की परम्परा में ब्रज मण्डल के मुख्यतः वृन्दावन, राधाकुण्ड, गोवर्धन, माँट, बेलवन, राल एवं गोकुल सहित अनेक स्थलों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन स्थानों के साथ ही ब्रज चौरासी कोस की परिधि में स्थित कामवन (कामा) में तुलसी-कण्ठी तैयार करने का कार्य वृहद स्तर पर किया जाता है। वृन्दावन की भाँति यहाँ भी कई वैष्णव सम्प्रदायों के देवालय स्थापित देखे जा सकते हैं। यहाँ बल्लभकुल सम्प्रदाय की प्राचीन गद्दी एवं देवालय भी दर्शित होते हैं। उत्तर मध्य काल में विशेष परिस्थिति वश वृन्दावन के देव विग्रह कामवन में विराजमान रहे। वृन्दावन से आमेर (जयपुर) तक के पड़ाव में जहाँ गोविन्द देव का श्रीविग्रह कुछ समय यहाँ विराजमान रहा वहीं संक्रमण के उस दौर में वृन्दावन के ही ठाकुर श्रीराधाबल्लभलाल कामवन में लगभग १०० वर्षों तक विराजे। ऐसे में यहाँ की देवालयी संस्कृति में समग्र ब्रज-परम्पराओं की झलक दिखनी स्वाभाविक है। यद्यपि वर्तमान में ठा. राधावल्लभ जी का श्रीविग्रह वृन्दावन में ही विराजमान है तथापि कामा में भी इसका भव्य मंदिर दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान में कामवन (कामा) स्थित इस देवालय से जुड़े श्री मूलचन्द कौशिक जी से हमने ब्रज की कण्ठी-माला परम्परा के संन्दर्भ में जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने बड़ी सहजता से हमें इसके विविध पक्षों से अवगत कराया। श्री शर्मा जी से हुई वार्ता के फलस्वरूप विषय सम्मत महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को उजागार करता उनका साक्षात्कार-

प्रश्न- पण्डित जी यहाँ कण्ठी माला उद्योग की परम्परा काफी पुराने समय से देखने को मिलती है, क्या कामवन (कामा) में तैयार होने वाली कण्ठी मालाओं की अपनी कोई खास विशेषता है?

उत्तर- देखिए कण्ठी-माला तो पूरे ब्रज में कई स्थानों पर बनती हैं और काम सीखने वाले कारीगर भी प्राय: एक कारखाने से दूसरे कारखाने में आते-जाते रहते हैं। ऐसे में किसी एक जगह ही परम्परा विशेष की बात सोचना तर्क संगत नहीं, हाँ इतना अवश्य है कि कहीं-कही अच्छे कारीगरों के समूह द्वारा एक लम्बे अन्तराल तक एक ही जगह कार्य किये जाने से उस स्थान के कार्य की चमक अलग ही देखी जा सकती है और कालान्तर में यही उत्कृष्टता उस स्थान की प्रमुख पहचान बनती है। कामवन में तुलसी का अपना उत्पादन भी है यहाँ ***भोजन-थाली***[१] के समीप खेतों अथवा जंगलों आज भी तुलसी के वन देखे जा सकते हैं, जहाँ से पर्याप्त मात्रा में पवित्र तुलसी काष्ठ प्राप्त होता है। उन्होंने कहा हमारे यहाँ तुलसी के महीन दानों (मनकों)का काम शुरू से प्रसिद्ध रहा है। तुलसी के इन बारीक दानों का कार्य करने वाले कारीगर भी यहाँ सहजता से उपलब्ध हैं। पण्डित जी ने बताया कामवन अन्य सम्प्रदायों के साथ ही बल्लभ कुल के आचार्यों की भी साधना स्थली रहा है, जहाँ मान्यतानुसार पतली (विशेष प्रकार की कण्ठी) धारण करने की परम्परा रही है। सम्भवत: इसी कारण यहाँ इस प्रकार के बारीक दानों के कार्य का प्रचलन बढ़ा या अन्य किसी कारण से, स्पष्टत: कहा नहीं जा सकता फिर भी यहाँ के बारीक काम के माँग ब्रज में ही नहीं अपितु पूरे भारत में देखी जा सकती है। उन्होंने बताया हालांकि आज प्रतिस्पर्धा के दौड़ में हर प्रकार का काम हर जगह सम्भव है। लेकिन फिर भी आज कई स्थल अपनी परम्परा विशेष या अन्य उपलब्धियों के चलते अलग ही पहचाने जाते हैं।

---

१. ब्रज चौरासी कोस यात्रा के अन्तर्गत पड़ने वाला महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल जिसे भगवान श्रीकृष्ण की लीला स्थली के रूप में जाना जाता है।

प्रश्न- पण्डित जी कामवन एवं इसके समीपवर्ती क्षेत्र में कई परिवार परम्परागत कण्ठी-माला उद्योग से जुड़े हैं ऐसे में यहाँ माल भी पर्याप्त मात्रा में तैयार होना स्वाभाविक है, क्या यह पूरा माल स्थानीय स्तर पर ही खप जाता है या आप लोगों ने इसके लिए कोई अन्य व्यवस्था सुझा रखी हैं?

उत्तर- कण्ठी-माला कोई रोजमर्रा की वस्तु तो नहीं कि हर रोज वैष्णव एक नई कण्ठी धारण करें। ऐसे में स्थानीय माँग पर निर्भर रहना समझदारी की बात नहीं।देखिए यह पूरा उद्योग एक निर्धारित प्रक्रिया के तहत चलता है, जिसमें अलग-अलग लोग अपने-अपने तरीके कार्य करते हुए इसका सन्तुलन बनाए हुए हैं। रही बात तैयार काम को बेचने की तो भइया! ये काम कोई नया नहीं, यहाँ पर कई परिवार पीढी दर पीढी इस काम को करते आ रहे हैं। यहाँ तुलसी कण्ठी उद्योग से जुड़े परिवार सीधे ग्राहकों पर ही आश्रित नहीं अपितु इनके द्वारा बड़ी तादाद में तैयार सामग्री सीधे थोक विक्रेताओं को भी दी जाती है। पण्डित जी ने बताया ब्रज क्षेत्र के कण्ठी-माला उद्योग में कामवन की कण्ठियाँ अलग ही पहचानी जा सकती हैं। इस परम्परा में यहाँ एक से बढ़कर एक आकर्षक कण्ठियों के साथ ही आम प्रचलित मालाएं भी उत्कृष्टता से तैयार होती हैं। वे बोले वैसे तो यहाँ वर्ष भर तीर्थ यात्रियों का आवागमन बना रहता है जिससे कुछ माल तो यहीं खप जाता है और शेष माल वृन्दावन, मथुरा, गोवर्धन एवं गोकुल आदि क्षेत्रों के कण्ठी-माला विक्रेता आवश्यकतानुसार ले जाते हैं या हम उनके यहाँ पहुँचा देते हैं। उन्होंने कहा हमारे यहाँ कुछ लोगों ने हरिद्वार, द्वारिका एवं अन्य बाहरी व्यापारियों में भी पैठ बना रखी है जिसके चलते वे अपना माल सीधे वहाँ भेजते हैं।

छायाचित्र

कण्ठी बनाने हेतु लाया गया तुलसी का बंडल

चित्र-१

तुलसी की माला बनाने हेतु तैयार टिकलियां

चित्र-२

कण्ठी माला हेतु खराद पर तैयार होते दाने (मनका)

चित्र-३

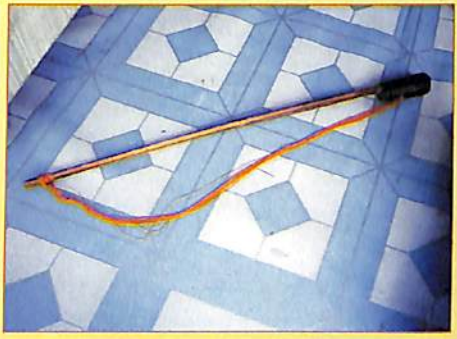

दाना (मनका) बनाने हेतु खराद पर प्रयुक्त कमानी

चित्र-४

माला-पुवाई चित्र-५

तुलसी-काष्ठ पर श्री विग्रह की मुखाकृति उकेरता कारीगर चित्र-६

बिक्री हेतु तुलसी की कण्ठी-माला तैयार करता साधु चित्र-७

विद्युत चलित मोटर से कण्ठी हेतु बारीक दाने तैयार करता कारीगर चित्र-८

चित्र-९

चित्र-१०

चित्र-११

चित्र-१२

चित्र-१३

चित्र-१४

चित्र-१५

चित्र परिचय-

९. भजन हेतु प्रयुक्त सुमिरनी (सर्पाकार माला), १०. तुलसी के मनकों से तैयार पंचलड़ी माला ११. हरिदासी सम्प्रदाय में प्रचलित एक विशेष प्रकार की माला १२. राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित माला का एक स्वरूप १३. चैतन्य मतावलम्बियों में प्रचलित एक विशेष प्रकार का कण्ठी-माला समूह १४. राधा-कृष्ण आकृति से तैयार पवित्र तुलसी-काष्ठ १५. एक अन्य प्रकार की आकर्षक माला।

शाक्तों की देवी को कण्ठी धारण कराते श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी चित्र-१६

वानर को कण्ठी धारण कराते बाबा अवधदास महाराज चित्र-१७

चतुर्भुजदास जी कृत द्वादशयश ग्रन्थ की प्रतिलिपि में उल्लिखित तुलसी-माला विषयक विवरण चित्र-१८ र.भा.स., वृन्दावन

अतिवल्लभ जी की वाणी में तुलसी-माला विषयक उल्लेख दर्शाता प्राचीन पाण्डुलिपि का पत्र, चित्र-१९ र.भा.स., वृन्दावन

वैष्णव की उच्च भावावस्था विषयक विवरण के उल्लेख में प्रसंगवश आया तुलसी माला का विवरण दर्शाती श्रीराधा सुधा निधि की सं. १७१२ में रचित प्रतिलिपि, चित्र-२० (गो. श्रीहित चिन्मय लाल जी के संग्रह से)

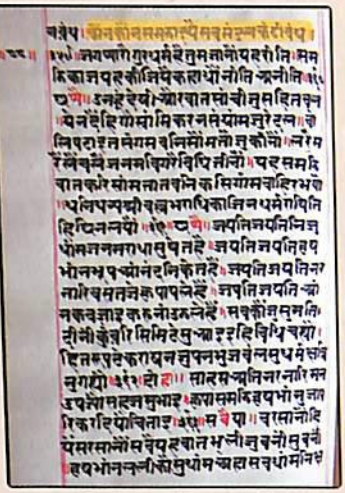

स्थानीय परम्परा में कण्ठी बाँधने (कण्ठी बन्ध चेला बनाने) विषयक परम्परा को प्रदर्शित करता प्राचीन पाण्डुलिपि का पत्र, चित्र-२४ रस भारती संस्थान, वृन्दावन

खंडित प्राचीन देवालयी दस्तावेज, जिसमें किसी वैष्णव द्वारा वृन्दावन की गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत कण्ठी बँधवाने की बात कही गई है। चित्र-२५ रघुनाथ भट्ट गो. पीठ, वृन्दावन

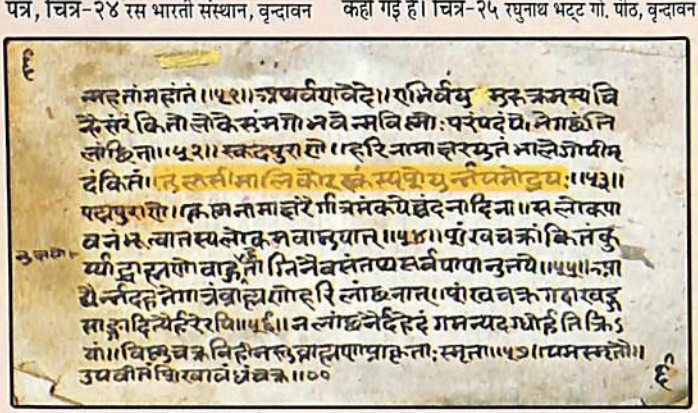

वृ.शो.सं. के हस्तलिखित ग्रन्थागार में संरक्षित हरिभक्ति विलास पाण्डुलिपि का पत्रक चित्र-२६

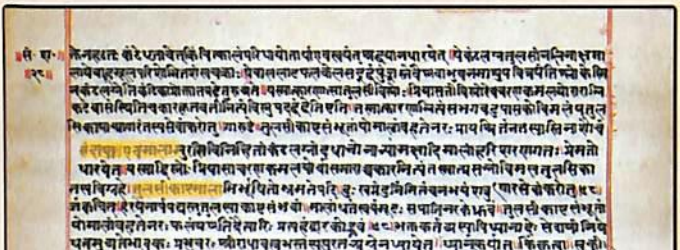

गो. ब्रजलाल जी द्वारा रचित सेवा विचार यश में उल्लिखित तुलसी-माला सम्बन्धी विवरण चित्र-२७ रस भारती संस्थान, वृन्दावन

तुलसी-कण्ठी माला उद्योग में प्रयुक्त खराद

चित्र-२५

सफेद चंदन एवं तुलसी काष्ठ से तैयार माला, चित्र–२६

सुमिरनी, चित्र–२७

एक अन्य आकर्षक कण्ठी चित्र–२८

माप के अनुरूप तुलसी की कंठी बनाने हेतु तैयार बंडल चित्र–२९

राधा नामाक्षर से युक्त तुलसी–माला, चित्र–३०

इकलड़ी,दुलड़ी एवं अन्य प्रकार की तुलसी–मालाऐं, चित्र–३१

शब्दानुक्रमणिका

इकलड़ी ३, ४, ४४
कमानी ४०
कण्ठा ३
कुंदा ३९
गौरवर्ण तुलसी ७
चैतन्य सम्प्रदाय ४, १२
टिकली ५
तुलसी मृत्तिका ७, १६, २४
तुलसीदल ७, १६,२०, २४
तुलसी-काष्ठ १,३,४,५,७ १०,१६,२१ २३,२४,३७ ३८
तुलसी-रोपण १६,१७,१८ १९
तुलसी-चयन १७
तुलसी-वन १९
तीन लड़ी ३,४
दाना ५,७,२२ ३७,३८,३९
दुपेचा ३८
दुलड़ी ३,४,४४
निम्बार्क सम्प्रदाय ४,१२
पटास ३९,४०
पंचमाला ३,४,८,४४
बटाली ३९,४०
वल्लभ कुल सम्प्रदाय १३,४४
महामंत्र-काष्ठ ३,४,८
रामानुज सम्प्रदाय १२
राधावल्लभ सम्प्रदाय ८,१२
ललित सम्प्रदाय ४
श्याम-वर्ण तुलसी ७
शालिग्राम कण्ठी ७
शुक सम्प्रदाय ४
सर्पाकार माला ८
सरकोंडा ३९,४१
साँचा ३९,४१
सुआ ३९,४०
सुई ३९,४१
सुदर्शन माला ७
सुमिरनी ८
हरिदासी सम्प्रदाय ८,४३
हाँसिया ३९,४१
हीरा ४,३८

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पुराण-संहिताएं:

ब्रह्मवैवर्त पुराण
वृहद्धर्म पुराण
स्कन्द पुराण
पद्म पुराण
गरुड़ पुराण
अगस्त संहिता
प्रह्लाद संहिता
भक्ति तंत्र
वृहन्नारदीय

ब्रज-साहित्य:

भक्ति रस बोधिनी टीका-नाभादास
भक्तमाल-प्रियादास
चैतन्य चरितामृत-कृष्णदास कविराज
राधासुधा निधि-गो॰ हित हरिवंश
पदावली-आनन्दघन
पदावली-रसखान
राधाकृष्ण भक्त कोश-प्रकाशक श्रीकृष्ण जन्म स्थान, मथुरा
ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास-प्रभु दयाल मीतल
रसिक अनन्यमाल-भगवत मुदित
ब्रज के भक्त-डॉ.अवध बिहारी कपूर
हरिभक्ति विलास-गोपाल भट्ट

हस्तलिखित ग्रन्थ (पाण्डुलिपियाँ):

रसिक अनन्य परचावली-चाचा हित वृन्दावनदास
हित रूप चरित्र बेली- चाचा हित वृन्दावनदास
द्वादश यश -चतुर्भुजदास
सेवा विचार यश-गो. ब्रजलाल
अतिवल्लभ जी की वाणी
व्यास वाणी

पत्र-पत्रिकाएँ:

आलोचना (पत्रिका)- ३१वाँ अंक
हिन्दुस्तान समाचार पत्र २१ जून २०१२

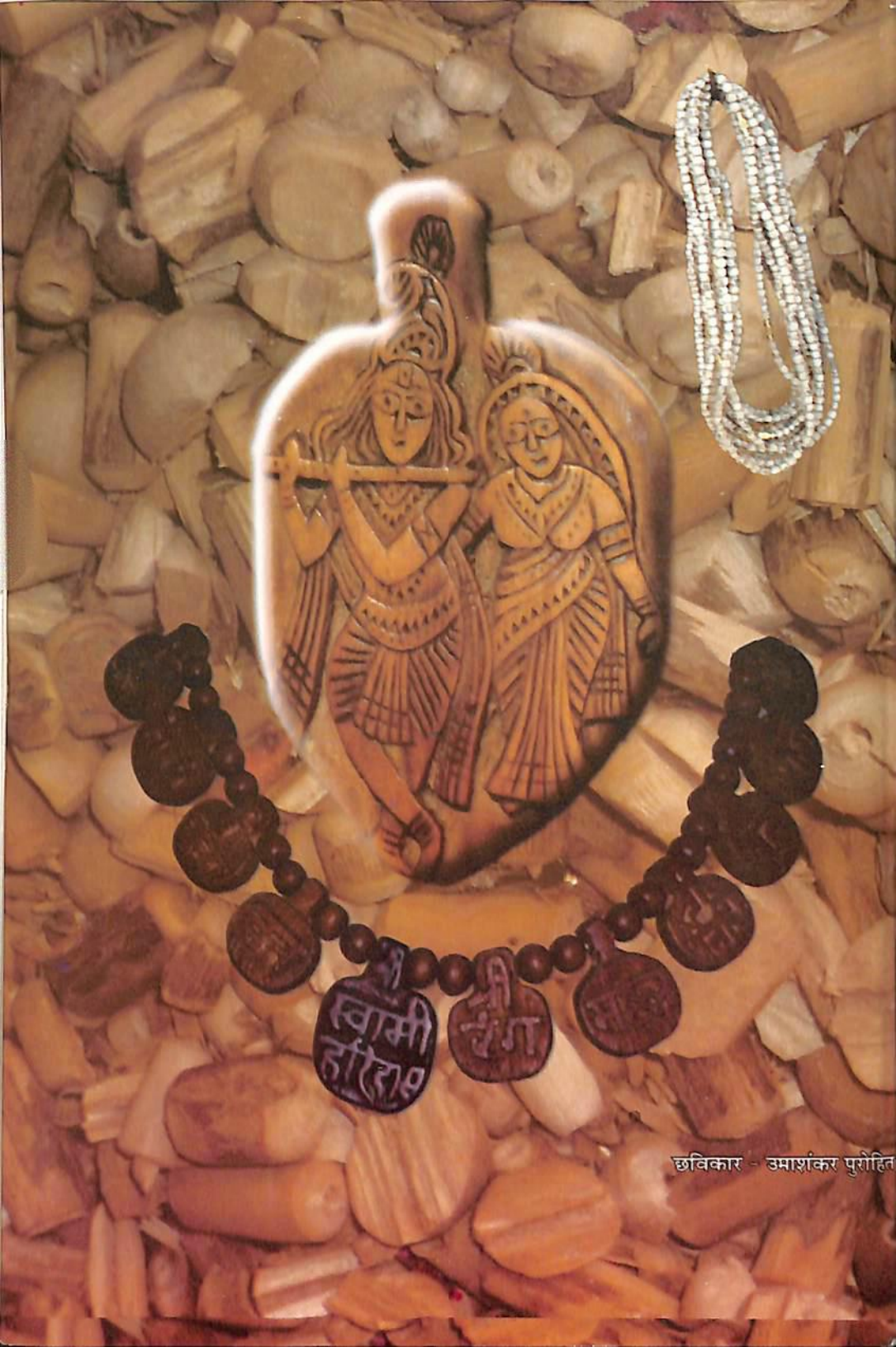

छविकार - उमाशंकर पुरोहित